पाँच फूल

लेखक
भारत-विख्यात उपन्यास-सम्राट्
श्रीप्रेमचन्दजी

प्रकाशक
सरस्वती-प्रेस, बनारस सिटी

प्रथम	नवम्बर	मूल्य
संस्करण	१९२९	बारह आने

श्रीयुत ________________________________

____

____
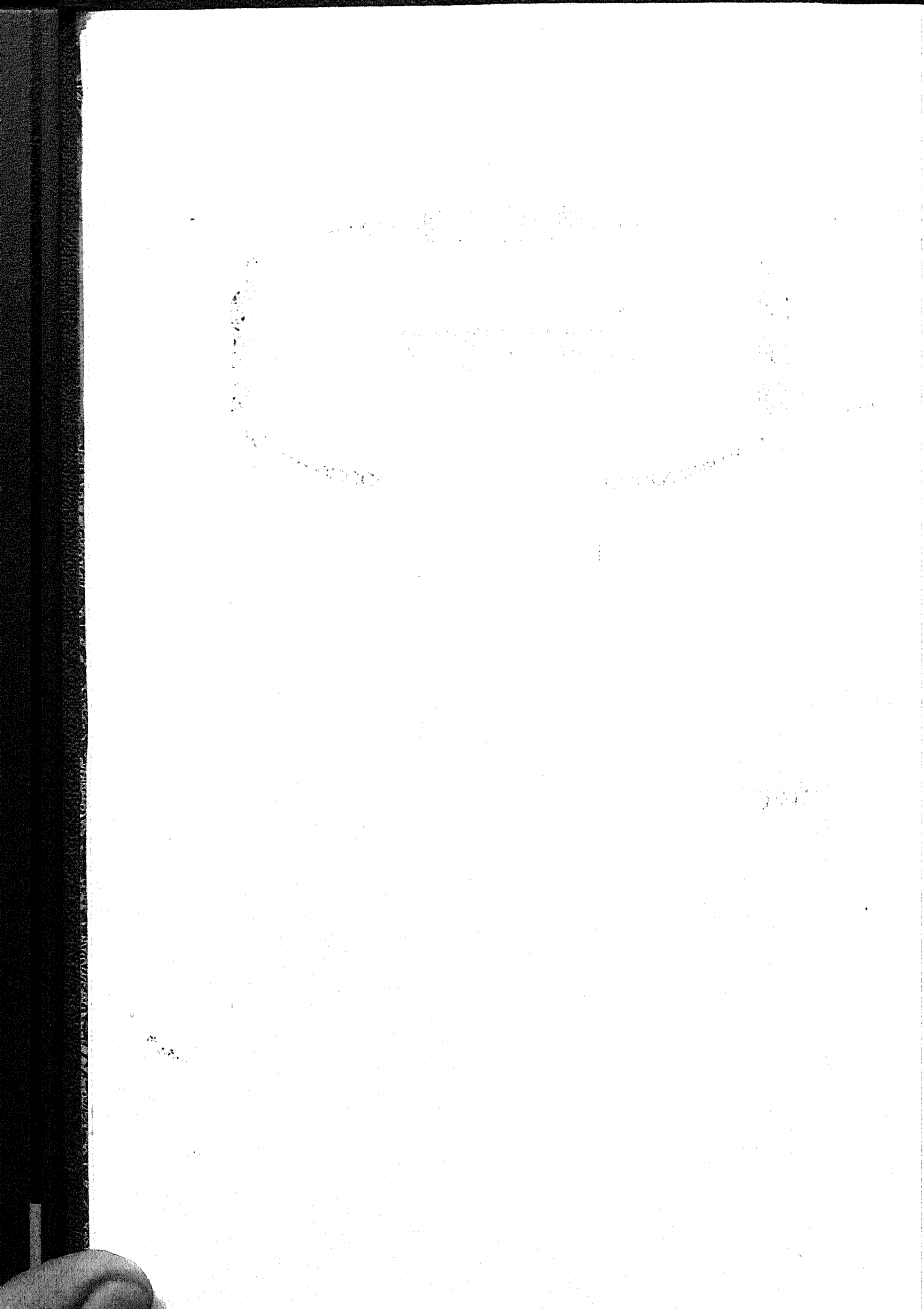
प्रकाशक का वक्तव्य

आज हम हिन्दी-संसार के समक्ष श्रीमान् 'प्रेमचन्द'जी की बिलकुल नवीन पाँच कहानियों का एक अभिनव संग्रह उपस्थित कर रहे हैं। यह कहानियाँ किसी अन्य पुस्तक में नहीं हैं। इनमें की एक कहानी 'इस्तीफा' की तारीफ पिछले महीनों बहुत काफ़ी हो चुकी है। हिन्दी के विशेष-विशेष विद्वानों ने कहा था कि "बाबू प्रेमचन्दजी की यह कहानी, हिन्दी में लिखी गई इधर की सभी कहानियों से श्रेष्ठ और अत्यन्त सामयिक है।" परन्तु हम यह निवेदन करेंगे कि पाठकगण अन्य चार कहानियों को पढ़ें और देखें कि 'कप्तान साहब', 'जिहाद', 'फातिहा' और 'मन्त्र'

नाम की कहानियाँ भी कितनी उत्तम और मनोहर हैं। हमारा तो ख़याल है कि कला और कथानक की दृष्टि से यह कहानियाँ इस्तीफ़ा से कहीं अधिक सुन्दर हैं, जिन्हें हिन्दी-संसार ने शायद अभी तक भलीभाँति नहीं परखा। आशा है, समग्र पुस्तक को पढ़कर हिन्दी-संसार इसका निर्णय स्वतः कर लेगा।

प्रेमचन्दजी के 'प्रतिज्ञा' नामक सुन्दर उपन्यास को प्रकाशित करते हुए हमने पाठकों को विश्वास दिलाया था कि हम शीघ्र ही उनका लिखा हुआ एक वृहत् उपन्यास भेंट करेंगे। आज हम बड़े गर्व के साथ अपने पाठकों को सन्देश सुनाते हैं कि श्रीमान् प्रेमचन्दजी का वह उपन्यास छपना शुरू हो गया है, और शीघ्र ही "ग़बन" के नाम से प्रकाशित होगा। पृष्ठ-संख्या ठीक चार सौ होगी और मूल्य २॥) मात्र।

जो सज्जन अभी से ।।) भेजकर हमारे यहाँ के स्थायी ग्राहक बन जायँगे, वे इसे पौने मूल्य में पायेंगे और हमारे प्रेस की सभी पुस्तकें उन्हें हमेशा पौने मूल्य में मिलेंगी।

आगे हम बहुत-सी उत्तम-उत्तम पुस्तकों के प्रकाशन का प्रबन्ध कर रहे हैं। आशा है, हिन्दी-प्रेमी सहृदय सज्जनों से हमें काफी साहाय्य प्राप्त होगा।

सरस्वती-प्रेस से प्रकाशित पुस्तकें

अवतार	...	...	॥)
सुघड़ बेटी	...	...	॥)
सुशीला कुमारी	...	...	॥)
मुरली-माधुरी	...	...	।=)
गल्प-समुच्चय	...	...	२॥)
प्रेम-तीर्थ	...	...	१॥)
प्रतिज्ञा	...	...	१॥)
रस-रंग	...	...	॥।)
वृत्त-विज्ञान	...	...	१॥)
ज्वालामुखी	...	...	॥।)

श्रीप्रेमचन्द्जी

कप्तान साहब

१
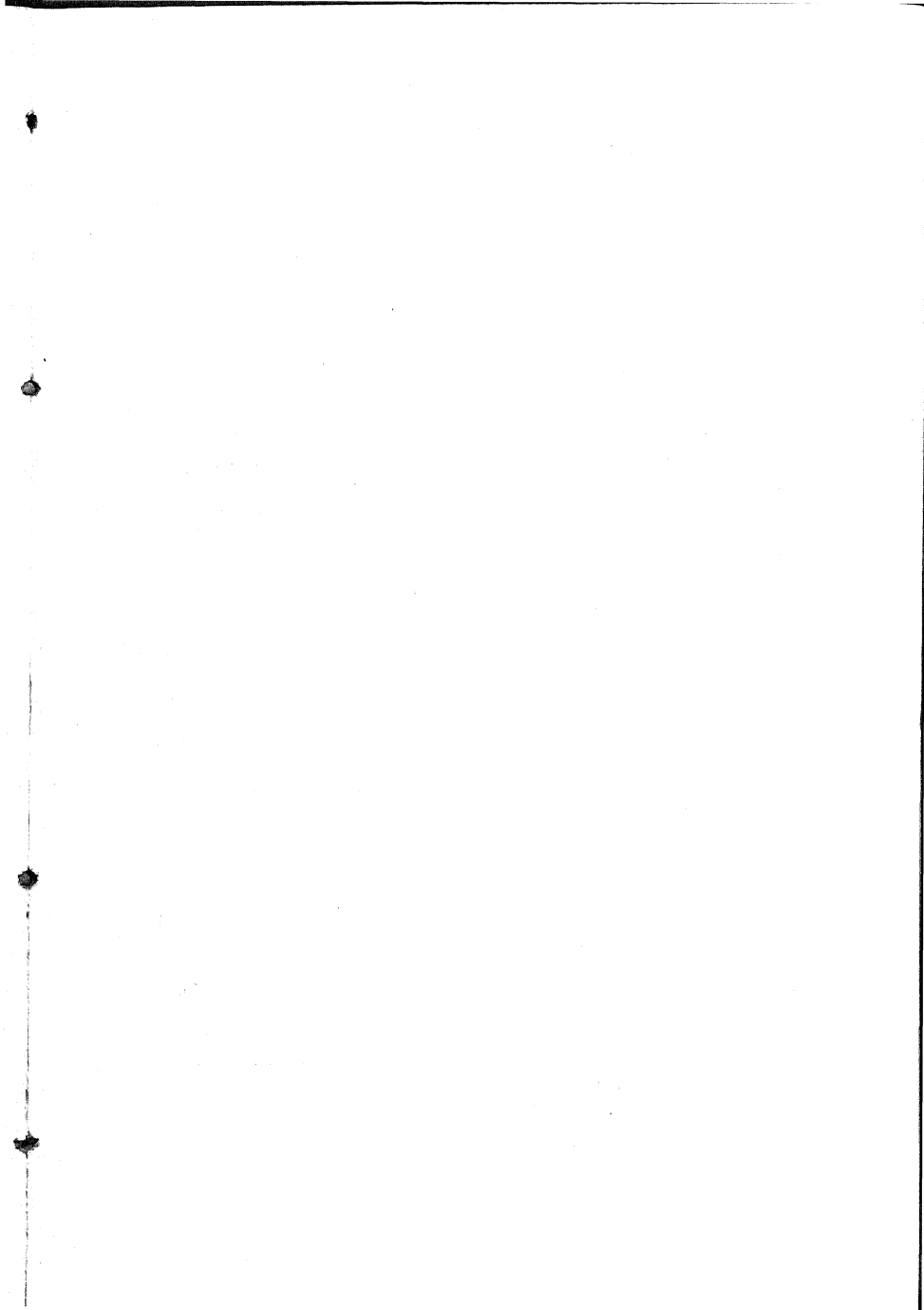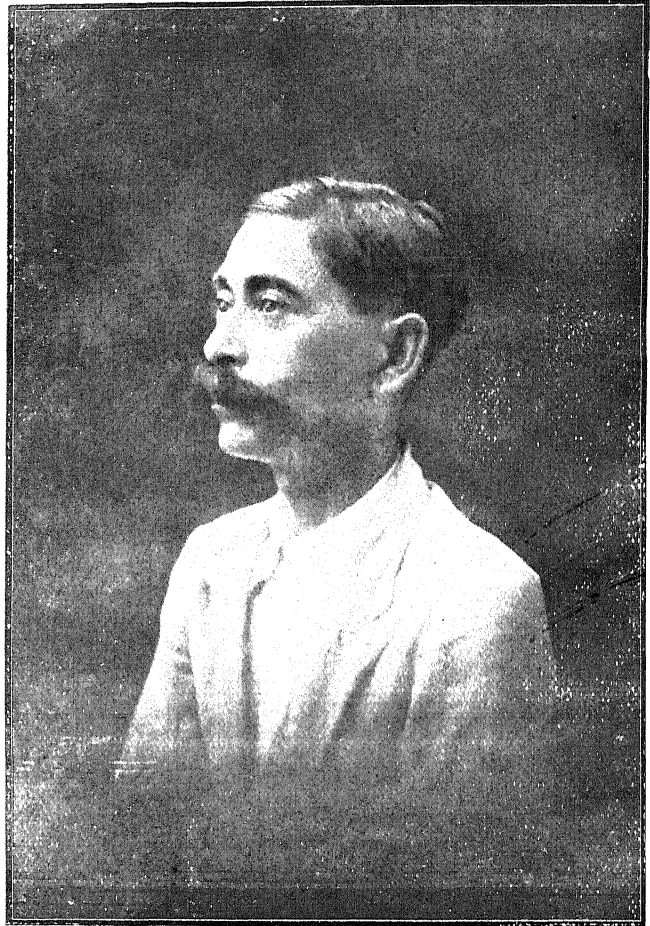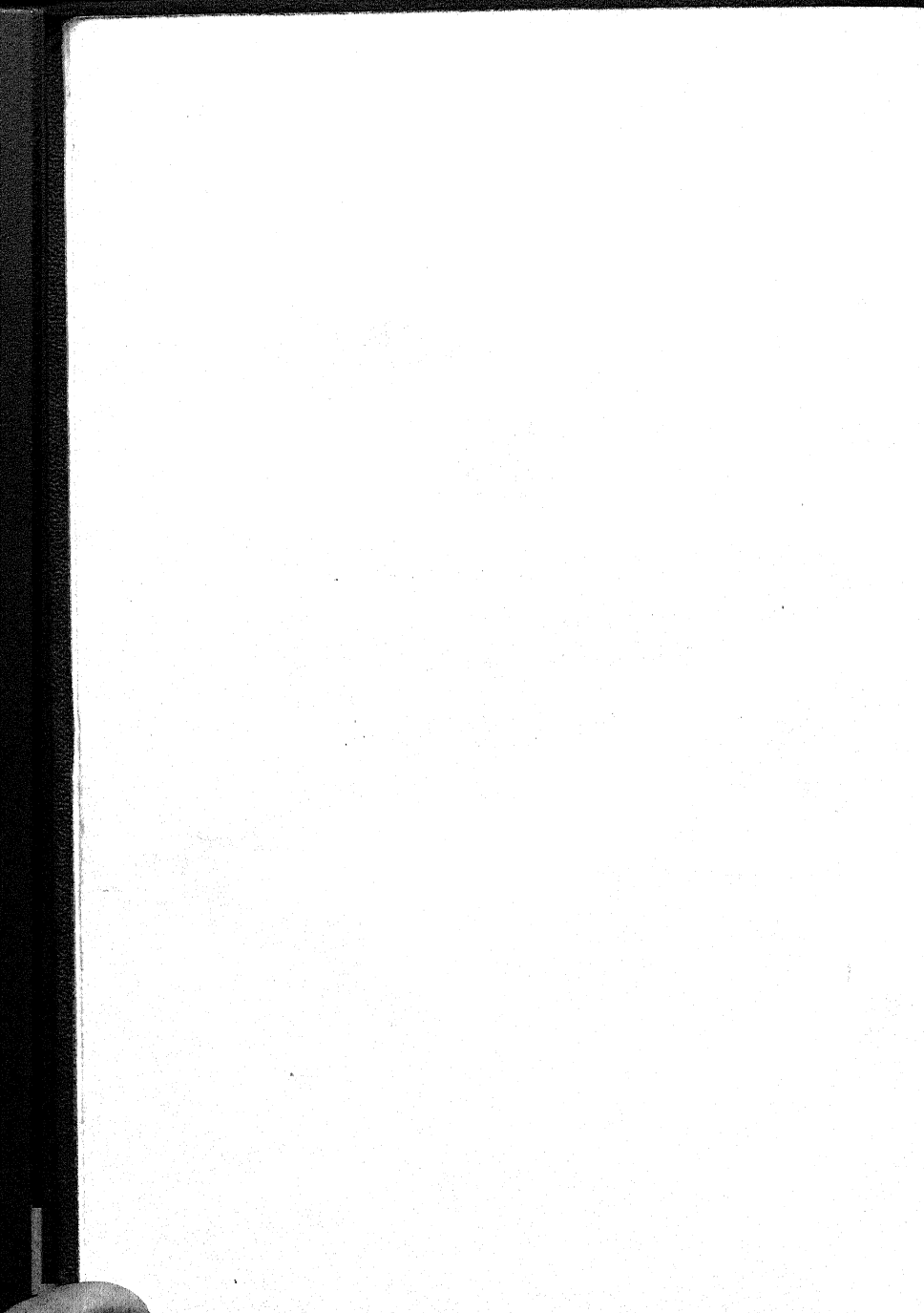
जगतसिंह को स्कूल जाना कुनैन खाने या मछली का तेल पीने से कम अप्रिय न था। वह सैलानी, आवारा, घुमक्कड़ युवक था। कभी अमरूद के बाग़ों की ओर निकल जाता और अमरूदों के साथ माली की गालियाँ बड़े शौक़ से खाता। कभी दरिया की सैर करता और मल्लाहों की डोंगियों में बैठकर उस पार के देहातों में निकल जाता। गालियाँ खाने में उसे मज़ा आता था। गालियाँ खाने का कोई अवसर वह हाथ से न जाने देता। सवार के घोड़े के पीछे ताली बजाना, एक्कों को पीछे से पकड़कर अपनी ओर खींचना, बुड्ढों की चाल की नक़ल करना, उसके

मनोरञ्जन के विषय थे। आलसी काम तो नहीं करता ; पर दुर्व्यसनों का दास होता है, और दुर्व्यसन धन के बिना पूरे नहीं होते। जगतसिंह को जब अवसर मिलता घर से रुपये उड़ा लेजाता। नक़द न मिले, तो बरतन और कपड़े उठा ले जाने में भी उसे संकोच न होता था। घर में जितनी शीशियाँ और बोतलें थीं, वह सब उसने एक-एक करके गुदड़ी-बाज़ार पहुँचा दीं। पुराने दिनों की कितनी ही चीजें घर में पड़ी थीं। उसके मारे एक भी न बचीं। इस कला में ऐसा दक्ष और निपुण था कि उसकी चतुराई और पटुता पर आश्चर्य होता था। एक बार वह बाहर-ही-बाहर, केवल कार्निसों के सहारे, अपने दोमंज़िला मकान की छत पर चढ़ गया और ऊपर ही से पीतल की एक बड़ी थाली लेकर उतर आया। घरवालों को आहट तक न मिली।

उसके पिता ठाकुर भक्तसिंह अपने क़स्बे के डाकख़ाने के मुंशी थे। अफसरों ने उन्हें घर का डाकख़ाना बड़ी दौड़-धूप करने पर दिया था ; किन्तु भक्तसिंह जिन इरादों से यहाँ आये थे, उनमें से एक भी पूरा न हुआ। उलटी हानि यह हुई कि देहातों में जो भाजी-साग, उपले-ईंधन मुफ्त मिल जाते थे, यहाँ बन्द हो गये। यहाँ सबसे पुराना घरौंव था। किसी को न दबा सकते थे, न सता सकते थे। इस

दुरवस्था में जगतसिंह की हथ-लपकियाँ बहुत अखरतीं। उन्होंने कितनी ही बार उसे बड़ी निर्दयता से पीटा। जगतसिंह भीमकाय होने पर भी चुपके से मार खा लिया करता था। अगर वह अपने पिता के हाथ पकड़ लेता, तो वह हिल भी न सकते; पर जगतसिंह इतना सीनाज़ोर न था। हाँ, मार-पीट, घुड़की-धमकी किसी का भी उस पर असर न होता था।

जगतसिंह ज्यों ही घर में क़दम रखता, चारों ओर से काँव-काँव मच जाती—माँ दुर-दुर करके दौड़ती, बहनें गालियाँ देने लगतीं, मानो घर में कोई साँड़ घुस आया हो। बेचारा उलटे पाँव भागता। कभी-कभी दो-दो तीन-तीन दिन भूखा रह जाता। घरवाले उसकी सूरत से जलते थे। इन तिरस्कारों ने उसे निर्लज्ज बना दिया था। कष्टों के ज्ञान से वह हत-सा होगया था। जहाँ नींद आ जाती वहाँ पड़ रहता, जो कुछ मिल जाता वही खा लेता।

ज्यों-ज्यों घरवालों को उसकी चौर-कला के गुप्त साधनों का ज्ञान होता जाता था, वे उससे चौकन्ने होते जाते थे। यहाँ तक कि एक बार पूरे महीने-भर तक उसकी दाल न गली। चरसवाले के कई रुपए ऊपर चढ़ गये। गाँजेवाले ने धुआँधार तक़ाजे करने शुरू किये। हलवाई

कड़वी बातें सुनाने लगा। बेचारे जगत को निकलना मुश्किल हो गया। रात-दिन ताक-झाँक में रहता, पर घात न मिलती थी। आख़िर एक दिन बिल्ली के भागों छींका टूटा। भक्तसिंह दोपहर को डाकख़ाने से चले, तो एक बीमा रजिस्ट्री जेब में डाल ली। कौन जाने कोई हरकारा या डाकिया शरारत कर जाय; किन्तु घर आये तो लिफ़ाफ़े को अचकन की जेब से निकालने की सुधि न रही। जगतसिंह तो ताक लगाए हुए था ही। पैसों के लोभ से जेब टटोली तो लिफ़ाफ़ा मिल गया। उस पर कई आने के टिकट लगे थे। वह कई बार टिकट चुराकर आधे दामों पर बेच चुका था। चट लिफ़ाफ़ा उड़ा लिया। यदि उसे मालूम होता कि उसमें नोट हैं, तो कदाचित् वह न छूता। लेकिन जब उसने लिफ़ाफ़ा फाड़ डाला और उसमें से नोट निकल पड़े, तो वह बड़े संकट में पड़ गया। वह फटा हुआ लिफ़ाफ़ा गला फाड़-फाड़कर उसके दुष्कृत्य को धिक्कारने लगा। उसकी दशा उस शिकारी की-सी हो गई जो चिड़ियों का शिकार करने जाय और अनजान में किसी आदमी पर निशाना मार दे। उसके मन में पश्चात्ताप था, लज्जा थी, दुःख था, पर उस भूल का दंड सहने की शक्ति न थी। उसने नोट लिफ़ाफ़े में रख दिये और बाहर चला गया।

कप्तान साहब

गरमी के दिन थे। दोपहर को सारा घर सो रहा था, पर जगत की आँखों में नींद न थी। आज उसकी बुरी तरह कुन्दी होगी। इसमें सन्देह न था। उसका घर पर रहना ठीक नहीं, दस-पाँच दिन के लिए उसे कहीं खिसक जाना चाहिए। तब तक लोगों का क्रोध शान्त हो जायगा। लेकिन कहीं दूर गये बिना काम न चलेगा। बस्ती में वह कई दिन तक अज्ञातवास नहीं कर सकता। कोई-न-कोई ज़रूर ही उसका पता दे देगा और वह पकड़ लिया जायगा। दूर जाने के लिए कुछ-न-कुछ ख़र्च तो पास होना चाहिए। क्यों न वह लिफ़ाफे में से एक नोट निकाल ले। यह तो मालूम ही हो जायगा कि उसी ने लिफ़ाफ़ा फाड़ा है, फिर एक नोट निकाल लेने में क्या हानि है। दादा के पास रुपए तो हैं ही, झक मारकर दे देंगे। यह सोचकर उसने दस रुपए का एक नोट उड़ा लिया। मगर उसी वक्त उसके मन में एक नई कल्पना का प्रादुर्भाव हुआ। अगर वह ये सब रुपए लेकर किसी दूसरे शहर में कोई दूकान खोल ले, तो बड़ा मज़ा हो। फिर एक-एक पैसे के लिए उसे क्यों किसी की चोरी करनी पड़े! कुछ दिनों में वह बहुत-सा रुपया जमा करके घर आयेगा, तो लोग कितने चकित हो जायँगे।

उसने लिफ़ाफ़े को फिर निकाला। उसमें कुल २००) के नोट थे। दो सौ रुपए में, दूध की दूकान खूब चल सकती है। आख़िर मुरारी की दूकान में दो-चार कढ़ाव और दो-चार पीतल के थालों के सिवा और क्या है? लेकिन कितने ठाठ से रहता है। रुपयों की चरस उड़ा देता है। एक-एक दाँव पर दस-दस रुपए रख देता है। नफ़ा न होता, तो यह ठाठ कहाँ से निभता। इस आनन्द-कल्पना में वह इतना मग्न हुआ कि उसका मन उसके क़ाबू से बाहर हो गया, जैसे प्रवाह में किसी के पाँव उखड़ जायँ और वह लहरों में बह जाय।

उसी दिन शाम को वह बम्बई चल दिया। दूसरे ही दिन मुंशी भक्तसिंह पर ग़बन का मुकदमा दायर हो गया।

२

बम्बई के क़िले के मैदान में बैंड बज रहा था और राजपूत रेजिमेंट के सजीले सुन्दर जवान क़वायद कर रहे थे। जिस प्रकार हवा बादलों को नये-नये रूप में बनाती और बिगाड़ती है, उसी भाँति सेना का नायक सैनिकों को नये-नये रूप में बना और बिगाड़ रहा था।

जब क़वायद ख़त्म हो गई, तो एक छरहरे डील का युवक नायक के सामने आकर खड़ा हो गया। नायक ने

पूछा—क्या नाम है ? सैनिक ने फ़ौजी सलाम करके कहा—'जगतसिंह ।'

'क्या चाहते हो ?'

'फ़ौज में भरती कर लीजिए ।'

'मरने से तो नहीं डरते ?'

'बिलकुल नहीं—राजपूत हूँ ।'

'बहुत कड़ी मेहनत करनी पड़ेगी ।'

'इसका भी डर नहीं ।'

'अदन जाना पड़ेगा ।'

'खुशी से जाऊँगा ।'

कप्तान ने देखा बला का हाजिर-जवाब, मन-चला, हिम्मत का धनी जवान है, तुरत फ़ौज में भरती कर लिया । तीसरे दिन रेजिमेंट अदन को रवाना हुआ । मगर ज्यों-ज्यों जहाज़ आगे चलता था, जगत का दिल पीछे रहा जाता था । जब तक ज़मीन का किनारा नज़र आता रहा, वह जहाज़ के डेक पर खड़ा अनुरक्त नेत्रों से उसे देखता रहा । जब वह भूमि-तट जल में विलीन हो गया, तो उसने एक ठंडी साँस ली और मुँह ढाँपकर रोने लगा । आज जीवन में पहली बार उसे प्रिय जनों की याद आई । वह छोटा-सा अपना क़स्बा, वह गाँजे की दूकान, वह सैर-

सपाटे, वह सुहृद मित्रों के जमघटे आँखों में फिरने लगे। कौन जाने फिर कभी उनसे भेंट होगी या नहीं। एक बार वह इतना बेचैन हुआ कि जी में आया पानी में कूद पड़े।

३

जगतसिंह को अदन में रहते तीन महीने गुजर गये। भाँति-भाँति की नवीनताओं ने कई दिनों तक उसे मुग्ध रक्खा, लेकिन पुराने संस्कार फिर जागृत होने लगे। अब कभी-कभी उसे स्नेहमयी माता की याद भी आने लगी, जो पिता के क्रोध, बहनों के धिक्कार और स्वजनों के तिरस्कार में भी उसकी रक्षा करती रहती थी। उसे वह दिन याद आये, जब एक बार वह बीमार पड़ा था। उसके बचने की कोई आशा न थी; पर न तो पिता को उसकी कुछ चिन्ता थी, न बहनों को। केवल माता थी, जो रात-की-रात उसके सिरहाने बैठी अपनी मधुर, स्नेहमयी बातों से उसकी पीड़ा शान्त करती रही थी। उन दिनों कितनी बार उसने उस देवी को नीरव रात्रि में रोते देखा था। वह स्वयं रोगों से जीर्ण हो रही थी, लेकिन उसकी सेवा-सुश्रूषा में वह अपनी व्यथा को ऐसी भूल गई थी, मानो उसे कोई कष्ट ही नहीं। क्या उसे माता के दर्शन फिर होंगे? वह इसी क्षोभ और

नैराश्य में समुद्र-तट पर चला जाता और घण्टों अनन्त-जल-प्रवाह को देखा करता। कई दिनों से उसे घर पर एक पत्र भेजने की इच्छा हो रही थी; किन्तु लज्जा और ग्लानि के कारण वह टालता जाता था। आख़िर, एक दिन उससे न रहा गया। उसने पत्र लिखा और अपने अपराधों के लिये क्षमा माँगी। पत्र, आदि से अन्त तक भक्ति से भरा हुआ था। अन्त में उसने इन शब्दों में अपनी माता को आश्वासन दिया था—'माताजी, मैंने बड़े-बड़े उत्पात किये हैं, आप लोग मुझसे तङ्ग आ गई थीं, मैं उन सारी भूलों के लिये सच्चे हृदय से लज्जित हूँ और आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जीता रहा, तो कुछ-न-कुछ कर दिखाऊँगा। तब कदाचित् आपको मुझे अपना पुत्र कहने में सङ्कोच न होगा। मुझे आशीर्वाद दीजिए कि, अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर सकूँ।'

यह पत्र लिखकर उसने डाक में छोड़ा और उसी दिन से उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा; किन्तु एक महीना गुज़र गया और कोई जवाब न आया। अब उसका जी घबड़ाने लगा। जवाब क्यों नहीं आता—कहीं माताजी बीमार तो नहीं हैं? शायद दादा ने क्रोधवश जवाब न लिखा होगा। कोई और विपत्ति तो नहीं आ पड़ी? कैम्प

में एक वृक्ष के नीचे कुछ सिपाहियों ने शालिग्राम की एक मूर्त्ति रख छोड़ी थी। कुछ श्रद्धालु सैनिक रोज़ उस प्रतिमा पर जल चढ़ाया करते थे। जगतसिंह उनकी हँसी उड़ाया करता। पर आज वह विक्षिप्तों की भाँति उस प्रतिमा के सम्मुख जाकर, बड़ी देर तक मस्तक झुकाये बैठा रहा। वह इसी ध्यानावस्था में बैठा था कि किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा। यह दफ़्तर का चपरासी था और उसके नाम की चिट्ठी लेकर आया था। जगतसिंह ने पत्र हाथ में लिया तो उसकी सारी देह काँप उठी। ईश्वर की स्तुति करके उसने लिफ़ाफा खोला और पत्र पढ़ा। लिखा था,—'तुम्हारे दादा को ग़बन के अभियोग में ५ वर्ष की सजा हो गई है। तुम्हारी माता इस शोक में मरणासन्न है। छुट्टी मिले, तो घर चले आओ।'

जगतसिंह ने उसी वक्त कप्तान के पास जाकर कहा—'हजूर, मेरी माँ बीमार है, मुझे छुट्टी दे दीजिए।'

कप्तान ने कठोर आँखों से देखकर कहा—'अभी छुट्टी नहीं मिल सकती।'

'तो मेरा इस्तीफ़ा ले लीजिए।'

'अभी इस्तीफ़ा भी नहीं लिया जा सकता।'

'मैं अब यहाँ एक क्षण नहीं रह सकता।'

'रहना पड़ेगा। तुम लोगों को बहुत जल्द लाम पर जाना पड़ेगा।'

'लड़ाई छिड़ गई ? आह, तब मैं घर नहीं जाऊँगा। हम लोग कब तक यहाँ से जायँगे ?'

'बहुत जल्द, दो ही चार दिन में।'

४

चार वर्ष बीत गये। कैप्टन जगतसिंह का-सा योद्धा उस रेजिमेंट में नहीं है। कठिन अवस्थाओं में उसका साहस और भी उत्तेजित हो जाता है। जिस मुहिम में सबकी हिम्मतें जवाब दे जाती हैं, उसे सर करना उसी का काम है। हल्ले और धावे में वह सदैव सबसे आगे रहता है, उसकी त्योरियों पर कभी मैल नहीं आता ; इसके साथ ही वह इतना विनम्र, इतना गम्भीर, इतना प्रसन्नचित्त है कि सारे अफ़सर और मातहत उसकी बड़ाई करते हैं। उसका पुनर्जीवन-सा हो गया है। उस पर अफ़सरों को इतना विश्वास है कि अब वे प्रत्येक विषय में उससे परामर्श करते हैं। जिससे पूछिये, वह वीर जगतसिंह की विरुदावली सुना देगा—कैसे उसने जर्मनों के मेगज़ीन में आग लगाई, कैसे अपने कप्तान को मेशीनगनों की मार से निकाला, कैसे

अपने एक मातहत सिपाही को कन्धे पर लेकर निकल आया। ऐसा जान पड़ता है उसे अपने प्राणों का मोह ही नहीं, मानो वह काल को खोजता फिरता है।

लेकिन नित्य रात्रि के समय जब जगतसिंह को अवकाश मिलता है, वह अपनी छोलदारी में अकेले बैठकर घरवालों की याद कर लिया करता है—दो-चार आँसू की बूँदें अवश्य गिरा देता है। वह प्रतिमास अपने वेतन का बड़ा भाग घर भेज देता है, और ऐसा कोई सप्ताह नहीं जाता कि वह माता को पत्र न लिखता हो। सबसे बड़ी चिन्ता उसे अपने पिता की है, जो आज उसी के दुष्कर्मों के कारण कारावास की यातना झेल रहे हैं। हाय! वह कौन दिन होगा कि वह उनके चरणों पर सिर रखकर अपना अपराध क्षमा करायेगा और वह उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देंगे।

५

सवा चार वर्ष बीत गये। सन्ध्या का समय है। नैनी जेल के द्वार पर भीड़ लगी हुई है। कितने ही कैदियों की मीयाद पूरी हो गई है। उन्हें लिवा जाने के लिए उनके घरवाले आये हुए हैं! किन्तु बूढ़ा भक्तसिंह अपनी अँधेरी

कोठरी में सिर झुकाये उदास बैठा हुआ है। उसकी कमर झुककर कमान हो गई। देह अस्थिपञ्जर-मात्र रह गई है। ऐसा जान पड़ता है किसी चतुर शिल्पी ने एक अकाल-पीड़ित मनुष्य की मूर्त्ति बनाकर रख दी है। उसकी मीयाद भी पूरी हो गई है। लेकिन उसके घर से कोई नहीं आया। कौन आवे ? आनेवाला था ही कौन ?

एक बूढ़े ; किन्तु हृष्ट-पुष्ट क़ैदी ने आकर उसका कन्धा हिलाया और बोला—कहो भगत, कोई घर से आया ?

भक्तसिंह ने कंपित कंठस्वर से कहा—'घर पर है ही कौन ?'

'घर तो चलोगे ही ?'

'मेरे घर कहाँ है ?'

'तो क्या यहीं पड़े रहोगे ?'

'अगर यह लोग निकाल न देंगे, तो यहीं पड़ा रहूँगा !'

आज चार साल के बाद भक्तसिंह को अपने प्रताड़ित, निर्वासित पुत्र की याद आ रही थी। जिसके कारण जीवन का सर्वनाश हो गया, आबरू मिट गई, घर बरबाद हो गया, उसकी स्मृति भी उन्हें असह्य थी ; किन्तु आज नैराश्य और दुःख के अथाह सागर में डूबते हुए उन्होंने उसी तिनके का सहारा लिया। न जाने उस बेचारे की क्या

दशा हुई। लाख बुरा है, है तो अपना लड़का ही। ख़ानदान की निशानी तो है, मरूँगा तो चार आँसू तो बहायेगा, दो चिल्लू पानी तो देगा। हाय ! मैंने उसके साथ कभी प्रेम का व्यवहार नहीं किया। ज़रा भी शरारत करता, तो यम-दूत की भाँति उसकी गर्दन पर सवार हो जाता। एक बार रसोई में बिना पैर धोये चले जाने के दंड में मैंने उसे उलटा लटका दिया था। कितनी बार केवल ज़ोर से बोलने पर मैंने उसे तमाचे लगाये। पुत्र-सा रत्न पाकर मैंने उसका आदर न किया। यह उसी का दंड है। जहाँ प्रेम का बंधन शिथिल हो, वहाँ परिवार की रक्षा कैसे हो सकती है !

६

सबेरा हुआ। आशा का सूर्य निकला। आज उसकी रश्मियाँ कितनी कोमल और मधुर थीं, वायु कितनी सुखद, आकाश कितना मनोहर, वृक्ष कितने हरे-भरे, पक्षियों का कल-रव कितना मीठा। सारी प्रकृति आशा के रंग में रँगी हुई थी। पर भक्तसिंह के लिए चारों ओर घोर अन्धकार था।

जेल का अफ़सर आया। क़ैदी एक पंक्ति में खड़े हुए। अफ़सर एक-एक का नाम लेकर रिहाई का परवाना देने

लगा। क़ैदियों के चेहरे आशा से प्रफुल्लित थे। जिसका नाम आता, वह खुश-खुश अफ़सर के पास जाता, परवाना लेता, झुककर सलाम करता और तब अपने विपत्ति-काल के संगियों से गले मिलकर बाहर निकल जाता। उसके घरवाले दौड़कर उससे लिपट जाते। कोई पैसे लुटा रहा था, कहीं मिठाइयाँ बाँटी जा रही थीं, कहीं जेल के कर्मचारियों को इनाम दिया जा रहा था। आज नरक के पुतले विनम्रता के देवता बने हुए थे।

अन्त में, भक्तसिंह का नाम आया। वह सिर झुकाये आहिस्ता-आहिस्ता जेलर के पास गये और उदासीन भाव से परवाना लेकर जेल के द्वार की ओर चले, मानो सामने कोई समुद्र लहरें मार रहा है। द्वार से बाहर निकलकर वह ज़मीन पर बैठ गये। कहाँ जायँ?

सहसा उन्होंने एक सैनिक अफ़सर को घोड़े पर सवार जेल की ओर आते देखा। उसकी देह पर खाकी वरदी थी, सिर पर कारचोबी साफ़ा। अजीब शान से घोड़े पर बैठा हुआथा। उसके पीछे-पीछे एक फिटन आ रही थी। जेल के सिपाहियों ने अफ़सर को देखते ही बंदूकें सँभालीं और लाइन में खड़े होकर सलाम किया।

भक्तसिंह ने मन में कहा—एक भाग्यवान् वह है जिसके लिए फ़िटन आ रही है। एक अभागा मैं हूँ जिसका कहीं ठिकाना नहीं।

फ़ौजी अफ़सर ने इधर-उधर देखा और घोड़े से उतर सीधे भक्तसिंह के सामने आकर खड़ा हो गया।

भक्तसिंह ने उसे ध्यान से देखा और तब चौंककर उठ खड़े हुए और बोले—'अरे! बेटा जगतसिंह!' जगतसिंह रोता हुआ उनके पैरों पर गिर पड़ा।

स्तीफ़ा

१
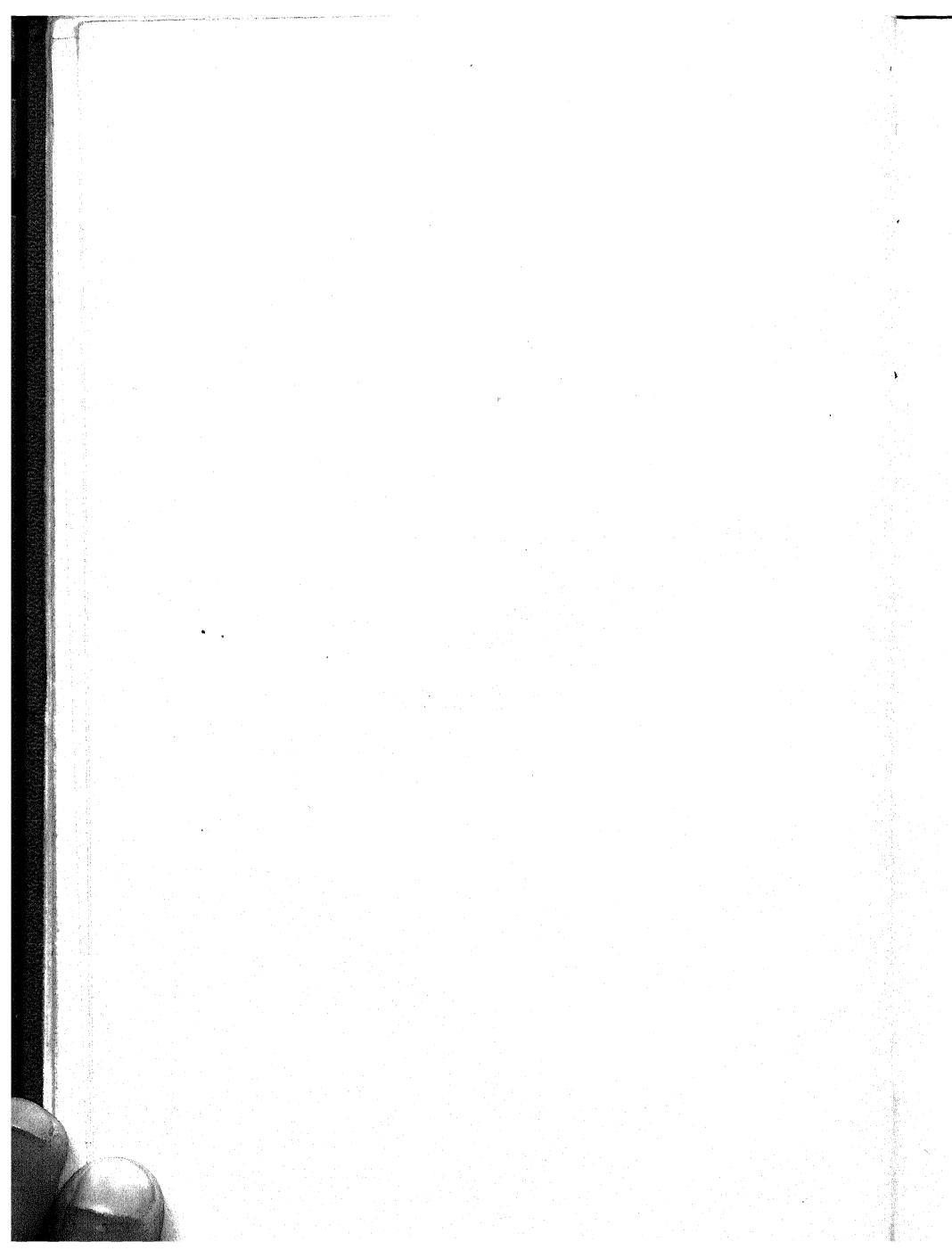
दफ़्तर का बाबू एक बेज़बान जीव है। मज़दूर को आँखें दिखाओ, तो वह त्योरियाँ बदलकर खड़ा हो जावेगा। कुली को एक डाँट बताओ, तो सिर से बोझ फेंककर अपनी राह लेगा। किसी भिखारी को दुतकारो, तो वह तुम्हारी ओर गुस्से की निगाह से देखकर चला जायगा। यहाँ तक कि गधा भी कभी-कभी तकलीफ़ पाकर दो-लत्तियाँ झाड़ने लगता है। मगर बेचारे दफ़्तर के बाबू को आप चाहे आँखें दिखायें, डाँट बतायें, दुतकारें या ठोकरें मारें, उसके माथे पर बल न आवेगा। उसे अपने विचारों पर जो आधिपत्य होता है, वह शायद किसी संयमी साधु में भी न

हो। संतोष का पुतला, सब्र की मूर्ति, सच्चा आज्ञाकारी, गरज़ उसमें तमाम मानवी अच्छाइयाँ मौजूद होती हैं। खँड़हर के भी एक दिन भाग्य जगते हैं। दिवाली के दिन उस पर भी रोशनी होती है, बरसात में उस पर हरियाली छाती है, प्रकृति की दिलचस्पियों में उसका भी हिस्सा है। मगर इस ग़रीब बाबू के नसीब कभी नहीं जागते। इसकी अँधेरी तक़दीर में रोशनी का जलवा कभी दिखाई नहीं देता। इसके पीले चेहरे पर कभी मुसकराहट की रोशनी नज़र नहीं आती। इसके लिए सदा सूखा-सावन है! कभी हरा भादों नहीं। लाला फ़तहचंद ऐसे ही एक बेज़बान जीव थे।

कहते हैं मनुष्य पर उसके नाम का भी कुछ असर पड़ता है। फ़तहचंद की दशा में यह बात यथार्थ सिद्ध न हो सकी। यदि उन्हें 'हारचंद' कहा जाय, तो कदाचित् यह अत्युक्ति न होगी। दफ्तर में हार, ज़िन्दगी में हार, मित्रों में हार, जीवन में उनके लिये चारों ओर हार और निराशाएँ ही थीं। लड़का एक भी नहीं लड़कियाँ तीन, भाई एक भी नहीं भौजाइयाँ दो, गाँठ में कौड़ी नहीं, मगर दिल में दया और मुरव्वत, सच्चा मित्र एक भी नहीं—जिससे मित्रता हुई उसने धोखा दिया, इस पर तन्दुरुस्ती अच्छी

नहीं—बत्तीस साल की अवस्था में बाल खिचड़ी हो गये थे। आँखों में ज्योति नहीं, हाज़मा चौपट, चेहरा पीला, गाल पिचके, कमर झुकी हुई, न दिल में हिम्मत न कलेजे में ताक़त। नौ बजे दफ्तर जाते और छः बजे शाम को लौटकर घर आते। फिर घर से बाहर निकलने की हिम्मत न पड़ती। दुनिया में क्या होता है, इसकी उन्हें बिल्कुल ख़बर न थी। उनकी दुनिया, लोक-परलोक जो कुछ था दफ्तर था। नौकरी की ख़ैर मनाते और ज़िन्दगी के दिन पूरे करते थे। न धर्म से वास्ता था, न दीन से नाता। न कोई मनोरंजन था न खेल। ताश खेले हुए भी शायद एक मुद्दत गुज़र गई थी।

२

जाड़ों के दिन थे। आकाश पर कुछ-कुछ बादल थे। फ़तहचंद साढ़े पाँच बजे दफ्तर से लौटे, तो चिराग़ जल गये थे। दफ्तर से आकर वह किसी से कुछ न बोलते। चुपके से चारपाई पर लेट जाते और पन्द्रह-बीस मिनट तक बिना हिले-डुले पड़े रहते। तब कहीं जाकर उनके मुँह से आवाज़ निकलती। आज भी प्रतिदिन की तरह वे चुपचाप पड़े थे कि एक ही मिनट में बाहर से किसी ने

पुकारा। छोटी लड़की ने जाकर पूछा, तो मालूम हुआ कि दफ्तर का चपरासी है। शारदा पति के मुँह-हाथ धोने के लिए लोटा-ग्लास माँज रही थी। बोली—उससे कह दे, क्या काम है, अभी तो दफ्तर से आये ही हैं, और अभी फिर बुलावा आ गया?

चपरासी ने कहा—साहब ने कहा है, अभी बुला लाओ। कोई बड़ा ज़रूरी काम है।

फ़तहचंद की ख़ामोशी टूट गई। उन्होंने सिर उठाकर पूछा—क्या बात है?

शारदा—कोई नहीं, दफ्तर का चपरासी है।

फ़तहचंद ने सहमकर कहा—दफ्तर का चपरासी! क्या साहब ने बुलाया है?

शारदा—हाँ कहता है, साहब बुला रहे हैं। यह कैसा साहब है तुम्हारा, जब देखो बुलाया करता है। सबेरे के गये-गये, अभी मकान को लौटे हो फिर भी बुलावा आ गया? कह दो नहीं आते—अपनी नौकरी ही लेगा या और कुछ!

फ़तहचंद ने सँभलकर कहा—ज़रा सुन लूँ किस लिये बुलाया है। मैंने तो सब काम ख़तम कर दिया था, अभी आता हूँ।

शारदा—ज़रा जल-पान तो करते जाओ, चपरासी से बातें करने लगोगे, तो तुम्हें अन्दर आने की याद भी न रहेगी।

यह कहकर वह एक प्याली में थोड़ी-सी दालमोट और सेव लाई। फ़तहचंद उठकर खड़े हो गये ; किन्तु खाने की चीज़ें देखकर चारपाई पर बैठ गये और प्याली की ओर चाव से देखकर डरते हुए बोले—लड़कियों को दे दिया है न!

शारदा ने आँखें चढ़ाकर कहा—हाँ-हाँ, दे दिया है, तुम तो खाओ!

इतने में छोटी लड़की आकर सामने खड़ी हो गई। शारदा ने उसकी ओर क्रोध से देखकर कहा—तू क्या आकर सिर पर सवार हो गई, जा बाहर खेल!

फ़तहचंद—रहने दो, क्यों डाँटती हो। यहाँ आओ चुन्नी, यह लो दालमोट ले जाओ!

चुन्नी माँ की ओर देखकर डरती हुई बाहर भाग गई।

फ़तहचंद ने कहा—क्यों बेचारी को भगा दिया। दो-चार दाने दे देता, तो ख़ुश हो जाती।

शारदा—इसमें है ही कितना कि सबको बाँटते फिरोगे। इसे देते तो बाक़ी दोनों न आ जातीं। किस-किस को देते?

इतने में चपरासी ने फिर पुकारा—बाबूजी हमें बड़ी देर हो रही है।

शारदा—कह क्यों नहीं देते कि इस वक्त न आयेंगे।

फ़तहचंद—ऐसा कैसे कह दूँ भाई, रोज़ी का मामला है!

शारदा—तो क्या प्राण देकर काम करोगे? सूरत नहीं देखते अपनी। मालूम होता है छः महीने के बीमार हो।

फ़तहचंद ने जल्दी-जल्दी दालमोट की दो-तीन फंकियाँ लगाई, एक ग्लास पानी पिया और बाहर की तरफ़ दौड़े। शारदा पान बनाती ही रह गई।

चपरासी ने कहा—बाबूजी! आपने बड़ी देर कर दी। अब ज़रा लपके चलिये, नहीं तो जाते ही डाँट बतावेगा।

फ़तहचंद ने दो कदम दौड़कर कहा—चलेंगे तो भाई आदमी ही की तरह, चाहे डाँट बतावे या दाँत दिखाये। हमसे दौड़ा तो नहीं जाता। बँगले ही पर है न?

चपरासी—भला वह दफ्तर क्यों आने लगा। बादशाह है कि दिल्लगी!

चपरासी तेज़ चलने का आदी था। बेचारे बाबू फ़तह-चंद धीरे-धीरे जाते थे। थोड़ी ही दूर चलकर हाँफ उठे। मगर मर्द तो थे ही, यह कैसे कहते कि भाई ज़रा और धीरे चलो। हिम्मत करके क़दम उठाते जाते थे, यहाँ तक कि

जाँघों में दर्द होने लगा और आधा रास्ता ख़तम होते-होते पैरों ने उठने से इन्कार कर दिया। सारा शरीर पसीने में तर हो गया। सिर में चक्कर आ गया। आँखों के सामने तितलियाँ उड़ने लगीं।

चपरासी ने ललकारा—ज़रा क़दम बढ़ाये चलो बाबू!

फ़तहचंद बड़ी मुश्किल से बोले—तुम जाओ मैं आता हूँ।

वे सड़क के किनारे पटरी पर बैठ गये और सिर को दोनों हाथों से थामकर दम मारने लगे। चपरासी ने इनकी यह दशा देखी, तो आगे बढ़ा। फ़तहचंद डरे कि यह शैतान जाकर न-जाने साहब से क्या कह दे, तो ग़जब ही हो जायगा। ज़मीन पर हाथ टेककर उठे और फिर चले। मगर कमज़ोरी से शरीर हाँफ रहा था। इस समय कोई बच्चा भी उन्हें ज़मीन पर गिरा सकता था। बेचारे किसी तरह गिरते-पड़ते साहब के बँगले पर पहुँचे। साहब बँगले पर टहल रहे थे। बार-बार फाटक की तरफ़ देखते थे और किसी को आते न देखकर मन-ही-मन में झल्लाते थे।

चपरासी को देखते ही आँखें निकाल कर बोले—इतनी देर कहाँ था?

चपरासी ने बरामदे की सीढ़ी पर खड़े-खड़े कहा—हुज़ूर! जब वह आवें तब तो, मैं तो दौड़ा चला आ रहा हूँ।

साहब ने पैर पटक कर कहा—बाबू क्या बोला?

चपरासी—आ रहे हैं हुज़ूर, घंटा-भर में तो घर में से निकले।

इतने में फ़तहचंद अहाते के तार के अंदर से निकलकर वहाँ आ पहुँचे और साहब को सिर झुकाकर सलाम किया।

साहब ने कड़ककर कहा—अब तक कहाँ था?

फ़तहचंद ने साहब का तमतमाता चेहरा देखा, तो उनका ख़ून सूख गया। बोले—हुज़ूर! अभी-अभी तो दफ्तर से गया हूँ, ज्योंही चपरासी ने आवाज़ दी, हाज़िर हुआ।

साहब—झूठ बोलता है, झूठ बोलता है, हम घंटे-भर से खड़ा है।

फ़तहचंद—हुज़ूर, मैं झूठ नहीं बोलता। आने में जितनी देर हो गई हो, मगर घर से चलने में मुझे बिलकुल देर नहीं हुई।

साहब ने हाथ की छड़ी घुमाकर कहा—चुप रह, सुअर, हम घंटा-भर से खड़ा है, अपना कान पकड़ो!

फ़तहचंद ने खून का घूँट पीकर कहा—हुज़ूर, मुझे दस साल काम करते हो गये, कभी........।

साहब—चुप रह, सुअर, हम कहता है अपना कान पकड़ो।

फ़तहचंद—जब मैंने कोई क़ुसूर किया हो ?

साहब—चपरासी ! इस सुअर का कान पकड़ो।

चपरासी ने दबी ज़बान से कहा—हुज़ूर, यह भी मेरे अफ़सर हैं, मैं इनका कान कैसे पकड़ूँ !

साहब—हम कहता है इसका कान पकड़ो, नहीं हम तुमको हंटरों से मारेगा।

चपरासी—हुज़ूर, मैं यहाँ नौकरी करने आया हूँ, मार खाने नहीं। मैं भी इज्ज़तदार आदमी हूँ। हुज़ूर अपनी नौकरी ले लें। आप जो हुकुम दें वह बजा लाने को हाज़िर हूँ; लेकिन किसी की इज्ज़त नहीं बिगाड़ सकता। नौकरी तो चार दिन की है। चार दिन के लिए क्यों ज़माने-भर से बिगाड़ करें ?

साहब अब क्रोध को न बरदाश्त कर सके। हंटर लेकर दौड़े। चपरासी ने देखा यहाँ खड़े रहने में ख़ैरियत नहीं है, तो भाग खड़ा हुआ। फ़तहचंद अभी तक चुप-चाप खड़े थे। साहब चपरासी को न पाकर उनके पास आया और उनके दोनों कान पकड़ कर हिला दिया।

बोला—तुम सुअर, गुस्ताख़ी करता है ? जाकर आफ़िस से फ़ाइल लाओ।

फ़तहचंद ने कान सहलाते हुए कहा—कौन-सा फ़ाइल लाऊँ हुज़ूर !

साहब—फ़ाइल—फ़ाइल और कौन-सा फ़ाइल ? तुम बहरा है, सुनता नहीं, हम फ़ाइल माँगता है !

फ़तहचंद ने किसी तरह दिलेर होकर कहा—आप कौन-सा फ़ाइल माँगते हैं ?

साहब—वही फ़ाइल जो हम माँगता है। वही फ़ाइल लाओ। अभी लाओ !

बेचारे फ़तहचंद को अब और कुछ पूछने की हिम्मत न हुई। साहब बहादुर एक तो यों ही तेज़ मिज़ाज थे, इस पर हुकूमत का घमंड और सबसे बढ़कर शराब का नशा। हंटर लेकर पिल पड़ते, तो बेचारे क्या कर लेते। चुपके से दफ्तर की तरफ़ चल पड़े।

साहब ने कहा—दौड़कर जाओ—दौड़ो।

फ़तहचंद ने कहा—हुज़ूर, मुझसे दौड़ा नहीं जाता।

साहब—ओ तुम बहुत सुस्त हो गया है। हम तुमको दौड़ना सिखायेगा। दौड़ो (पीछे से धक्का देकर) तुम अब भी नहीं दौड़ेगा ?

यह कहकर साहब हंटर लेने चले। फ़तहचंद दफ्तर के बाबू होने पर भी मनुष्य ही थे। यदि वह बलवान होते तो उस बदमाश का ख़ून पी जाते। अगर उनके पास कोई हथियार होता, तो उस पर ज़रूर चला देते। लेकिन उस हालत में तो मार खाना ही उनकी तक़दीर में लिखा था। वे बेतहाशा भागे और फाटक से बाहर निकलकर सड़क पर आ गये।

३

दूसरे दिन फ़तहचंद दफ्तर न गये। जाकर करते ही क्या! साहब ने फ़ाइल का नाम तक न बताया। शायद नशा में भूल गया। धीरे-धीरे घर की ओर चले। मगर इस बेइज्ज़ती ने पैरों में बेड़ियाँ-सी डाल दी थीं। माना कि वह शारीरिक बल में साहब से कम थे, उनके हाथ में कोई चीज़ भी न थी; लेकिन क्या वह उसकी बातों का जवाब न दे सकते थे? उनके पैरों में जूते तो थे। क्या वह जूते से काम न ले सकते थे? फिर क्यों उन्होंने इतनी ज़िल्लत बरदाश्त की?

मगर इलाज ही क्या था। यदि वह क्रोध में उन्हें गोली मार देता, तो उसका क्या बिगड़ता। शायद एक-दो महीने

की सादी क़ैद हो जाती। सम्भव है दो-चार सौ रुपये जुर्माना हो जाता, मगर इनका परिवार तो मिट्टी में मिल जाता। संसार में कौन था जो इनके स्त्री-बच्चों की ख़बर लेता। वह किसके दरवाज़े हाथ फैलाते। यदि उनके पास इतने रुपए होते, जिनसे उनके कुटुम्ब का पालन हो जाता, तो वह आज इतनी ज़िल्लत न सहते। या तो मर ही जाते या उस शैतान को कुछ सबक ही दे देते। अपनी जान का इन्हें डर न था। ज़िन्दगी में ऐसा कौन सुख था, जिसके लिए वह इस तरह डरते। ख़्याल था सिर्फ़ परिवार के बरबाद हो जाने का।

आज फ़तहचंद को अपनी शारीरिक कमज़ोरी पर जितना दुःख हुआ, उतना कभी न हुआ था। अगर उन्होंने शुरू ही से तन्दुरुस्ती का ख़्याल रखा होता, कुछ कसरत करते रहते, लकड़ी चलाना जानते होते, तो क्या इस शैतान की इतनी हिम्मत होती कि वह उनका कान पकड़ता! उसकी आँखें निकाल लेते। कम से कम इन्हें घर से एक छुरी लेकर चलना था और न होता दो-चार हाथ जमाते ही—पीछे देखा जाता, जेलख़ाना ही तो होता या और कुछ!

वे ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते थे त्यों-त्यों उनकी तबीयत अपनी कायरता और बोदेपन पर और भी झल्लाती थी।

अगर वह उचककर उसके दो-चार थप्पड़ लगा देते, तो क्या होता—यही न कि साहब के ख़ानसामे, बहरे, सब उन पर पिल पड़ते और मारते-मारते बेदम कर देते। बाल-बच्चों के सिर पर जो कुछ पड़ती—पड़ती। साहब को इतना तो मालूम हो जाता कि किसी ग़रीब को बेगुनाह ज़लील करना आसान नहीं। आख़िर आज मैं मर जाऊँ तो क्या हो? तब कौन मेरे बच्चों का पालन करेगा? तब उनके सिर जो कुछ पड़ेगी वह आज ही पड़ जाती, तो क्या हर्ज था।

इस अंतिम विचार ने फ़तहचंद के हृदय में इतना जोश भर दिया कि वह लौट पड़े और साहब से ज़िल्लत का बदला लेने के लिए दो-चार क़दम चले। मगर फिर ख़्याल आया, आखिर जो कुछ ज़िल्लत होनी थी, वह तो हो ही ली। कौन जाने बँगला पर हो या क्लब चला गया हो। उसी समय उन्हें शारदा की बेकसी और बच्चों का बिना बाप के हो जाने का ख़याल भी आ गया। फिर लौटे और घर चले।

४

घर में जाते ही शारदा ने पूछा—किस लिये बुलाया था, बड़ी देर हो गई?

फ़तहचंद ने चारपाई पर लेटते हुए कहा—नशे की सनक थी और क्या ? शैतान ने मुझे गालियाँ दीं, ज़लील किया, बस यही रट लगाये हुए था कि देर क्यों की। निर्दयी ने चपरासी से मेरा कान पकड़ने को कहा।

शारदा ने ग़ुस्से में आकर कहा—तुमने एक जूता उतार कर दिया नहीं सुअर को ?

फ़तहचंद—चपरासी बहुत शरीफ़ है। उसने साफ़ कह दिया—हुज़ूर, मुझसे यह काम न होगा। मैंने भले आदमियों की इज्ज़त उतारने के लिए नौकरी नहीं की थी। वह उसी वक्त सलाम करके चला गया।

शारदा—यह बहादुरी है। तुमने उस साहब को क्यों नहीं फटकारा ?

फ़तहचंद—फटकारा क्यों नहीं—मैंने भी ख़ूब सुनाई। वह छड़ी लेकर दौड़ा—मैंने भी जूता सँभाला। उसने मुझे कई छड़ियाँ जमाईं—मैंने भी कई जूते लगाये।

शारदा ने ख़ुश होकर कहा—सच ? इतना-सा मुँह हो गया होगा उसका।

फ़तहचंद—चेहरे पर झाड़ू-सी फिरी हुई थी।

शारदा—बड़ा अच्छा किया तुमने, और मारना चाहिए था। मैं होती, तो बिना जान लिए न छोड़ती।

फ़तहचंद—मार तो आया हूँ, लेकिन अब ख़ैरियत नहीं है। देखो, क्या नतीजा होता है? नौकरी तो जायगी ही, शायद सज़ा भी काटनी पड़े!

शारदा—सज़ा क्यों काटनी पड़ेगी। क्या कोई इंसाफ़ करनेवाला नहीं है? उसने क्यों गालियाँ दीं, क्यों छड़ी जमाई?

फ़तहचंद—उसके सामने मेरी कौन सुनेगा। अदालत भी उसी की तरफ़ हो जायगी।

शारदा—हो जायगी, हो जाय; मगर देख लेना अब किसी साहब की यह हिम्मत न होगी कि किसी बाबू को गालियाँ दे बैठे। तुम्हें चाहिए था, कि ज्यों ही उसके मुँह से गालियाँ निकलीं, लपककर एक जूता रसीद करते।

फ़तहचंद तो फिर इस वक्त ज़िन्दा लौट भी न सकता। ज़रूर मुझे गोली मार देता।

शारदा—देखी जाती।

फ़तहचंद ने मुस्कराकर कहा—फिर तुम लोग कहाँ जातीं?

शारदा—जहाँ ईश्वर की मरज़ी होती। आदमी के लिए सबसे बड़ी चीज़ इज्ज़त है। इज्ज़त गँवाकर बाल-बच्चों की परवरिश नहीं की जाती। तुम उस शैतान को

मारकर आये हो, मैं ग़रूर से फूली नहीं समाती। मार खाकर आते, तो शायद मैं तुम्हारी सूरत से भी घृणा करती। यों ज़बान से चाहे कुछ न कहती, मगर दिल से तुम्हारी इज़्ज़त जाती रहती। अब जो कुछ सिर पर आयेगी ख़ुशी से झेल लूँगी .....। कहाँ जाते हो, सुनो सुनो, कहाँ जाते हो ?

फ़तहचंद दीवाने होकर जोश में घर से निकल पड़े। शारदा पुकारती रह गई। वह फिर साहब के बँगले की तरफ़ जा रहे थे। डर से सहमे हुए नहीं; बल्कि ग़रूर से गर्दन उठाये हुए। पक्का इरादा उनके चेहरे से झलक रहा था। उनके पैरों में वह कमज़ोरी, आँखों में वह बेकसी न थी। उनकी कायापलट-सी हो गई। वह कमज़ोर बदन, पीला-मुखड़ा, दुबले बदनवाला, दफ्तर के बाबू की जगह अब मर्दाना चेहरा, हिम्मत के भरा हुआ, मज़बूत गठा हुआ जवान था। उन्होंने पहले एक दोस्त के घर जाकर उसका डंडा लिया और अकड़ते हुए साहब के बङ्गले पर जा पहुँचे।

५

इस वक्त नौ बजे थे। साहब खाने की मेज़ पर थे। मगर फ़तहचंद ने आज उनके मेज़ पर से उठ जाने का

इन्तज़ार न किया। खानसामा कमरे से बाहर निकला और वह चिक उठाकर अन्दर गया। कमरा प्रकाश से जगमगा रहा था। ज़मीन पर ऐसी क़ालीन बिछी हुई थी, जैसी फ़तहचंद की शादी में नहीं बिछी होगी। साहब बहादुर ने उसकी तरफ क्रोधित दृष्टि से देखकर कहा—तुम क्यों आया, बाहर जाओ, क्यों अंदर चला आया ?

फ़तहचंद ने खड़े-खड़े डंडा सँभालकर कहा—तुमने मुझसे अभी फ़ाइल माँगा था, वही फ़ाइल लेकर आया हूँ। खाना खा लो, तो दिखाऊँ। तब तक मैं बैठा हूँ। इतमीनान से खाओ, शायद यह तुम्हारा आख़िरी खाना होगा। इसी कारण ख़ूब पेट-भर खा लो।

साहब सन्नाटे में आ गये। फ़तहचंद की तरफ़ डर और क्रोध की दृष्टि से देख कर काँप उठे। फ़तहचंद के चेहरे पर पक्का इरादा झलक रहा था। साहब समझ गये, यह मनुष्य इस समय मरने-मारने के लिए तैयार होकर आया है। ताक़त में फ़तहचंद उनके पासंग भी नहीं था। लेकिन यह निश्चय था कि वह ईंट का जवाब पत्थर से नहीं, बल्कि लोहे से देने को तैयार है। यदि वह फ़तहचंद को बुरा-भला कहते हैं, तो क्या आश्चर्य है कि वह डंडा लेकर पिल पड़े। हाथा-पाई करने में यद्यपि उन्हें जीतने में

ज़रा भी संदेह नहीं था, लेकिन बैठे-बिठाये डंडे खाना भी तो कोई बुद्धिमानी नहीं है। कुत्ते को आप डंडे से मारिये, ठुकराइये, जो चाहे कीजिए मगर उसी समय तक, जब तक वह गुर्राता नहीं। एक बार गुर्राकर दौड़ पड़े, तो फिर देखें आपकी हिम्मत कहाँ जाती है? यही हाल उस वक्त साहब बहादुर का था। जब तक यक़ीन था कि फ़तहचंद घुड़की-धुरकी, हंटर-ठोकर सब कुछ ख़ामोशी से सह लेगा, तब तक आप शेर थे; अब वह त्योरियाँ बदले, डंडा सँभाले, बिल्ली की तरह घात लगाये खड़ा है। ज़बान से कोई कड़ा शब्द निकला और उसने डंडा चलाया। वह अधिक-से-अधिक उसे बरख़ास्त कर सकते हैं। अगर मारते हैं, तो मार खाने का भी डर। उस पर फ़ौजदारी में मुक़दमा दायर हो जाने का अंदेशा—माना कि वह अपने प्रभाव और ताक़त से अंत में फ़तहचंद को जेल में डलवा देंगे; परन्तु परेशानी और बदनामी से किसी तरह न बच सकते थे। एक बुद्धिमान्, और दूरन्देश आदमी की तरह उन्होंने यह कहा—ओहो, हम समझ गया, आप हमसे नाराज़ हैं। हमने क्या आपको कुछ कहा है, आप क्यों हमसे नाराज़ हैं?

फ़तहचंद ने तनकर कहा—तुमने अभी आध घंटा

पहले मेरे कान पकड़े थे और मुझे सैकड़ों ऊल-जलूल बातें कहीं थीं। क्या इतनी जल्दी भूल गये ?

साहब—मैंने आपका कान पकड़ा, आ-हा-हा-हा-हा ! मैंने आपका कान पकड़ा—आ-हा-हा-हा ! क्या मज़ाक है ? क्या मैं पागल हूँ या दीवाना ?

फ़तहचंद—तो क्या मैं झूठ बोल रहा हूँ ? चपरासी गवाह है। आपके नौकर-चाकर भी देख रहे थे।

साहब—कब का बात है ?

फ़तहचंद—अभी-अभी कोई आध घंटा हुआ, आपने मुझे बुलाया था और बिना कारण मेरे कान पकड़े और धक्के दिये थे।

साहब—ओ बाबूजी, उस वक्त हम नशा में था। बहरा ने हमको बहुत दे दिया था। हमको कुछ ख़बर नहीं, क्या हुआ माई गाड, हमको कुछ ख़बर नहीं।

फ़तहचंद—नशा में अगर तुमने मुझे गोली मार दी होती, तो क्या मैं मर न जाता ? अगर तुम्हें नशा था और नशा में सब कुछ मुआफ़ है, तो मैं भी नशा में हूँ। सुनो मेरा फ़ैसला, या तो अपने कान पकड़ो कि फिर कभी किसी भले आदमी के संग ऐसा बर्ताव न करोगे ; या मैं आकर तुम्हारे कान पकड़ूँगा। समझ गये कि नहीं ?

इधर-उधर हिलो नहीं, तुमने जगह छोड़ी और मैंने डंडा चलाया। फिर खोपड़ी टूट जाय, तो मेरी ख़ता नहीं। मैं जो कुछ कहता हूँ वह करते चलो, पकड़ो कान !

साहब ने बनावटी हँसी हँस कर कहा—वेल बाबूजी, आप बहुत दिल्लगी करता है। अगर हमने आपको बुरा बात कहा है, तो हम आपसे माफी माँगता है !

फ़तहचंद—(डंडा तौल कर) नहीं, कान पकड़ो !

साहब आसानी से इतनी ज़िल्लत न सह सके। लपककर उठे और चाहा कि फ़तहचंद के हाथ से लकड़ी छीन लें, लेकिन फ़तहचंद गाफ़िल न था। साहब मेज़ पर से उठने भी न पाये थे कि उसने डंडे का भरपूर और तुला हुआ हाथ चलाया। साहब तो नंगे सिर थे ही चोट सिर पर पड़ गई। खोपड़ी भन्ना गई। एक मिनट तक सिर को पकड़े रहने के बाद बोले—हम तुमको बरख़ास्त कर देगा।

फ़तहचंद—इसकी मुझे परवाह नहीं। मगर आज मैं तुमसे बिना कान पकड़ाये नहीं जाऊँगा। कान पकड़कर वादा करो कि फिर किसी भले आदमी के साथ ऐसी बेअदबी न करोगे, नहीं तो मेरा दूसरा हाथ पड़ा ही चाहता है !

यह कहकर फ़तहचंद ने फिर डंडा उठाया। साहब को अभी तक पहली चोट न भूली थी। अगर कहीं यह

दूसरा हाथ पड़ गया, तो शायद खोपड़ी खुल जाय। कान पर हाथ रखकर बोले—अब आप ख़ुश हुआ ?

'फिर तो कभी किसी को गाली न दोगे ?'

'कभी नहीं।'

'अगर फिर कभी ऐसा किया, तो समझ लेना मैं कहीं बहुत दूर नहीं हूँ।'

'अब किसी को गाली न देगा।'

'अच्छी बात है अब मैं जाता हूँ, आज से मेरा स्तीफ़ा है। मैं कल स्तीफ़ा में यह लिख कर भेजूँगा कि तुमने मुझे गालियाँ दीं; इसलिये मैं नौकरी नहीं करना चाहता, समझ गये ?'

साहब—आप स्तीफ़ा क्यों देता है। हम तो बरख़ास्त नहीं करता।

फ़तहचंद—अब तुम-जैसे पाजी आदमी की मातहती न करूँगा।

यह कहते हुए फ़तहचंद कमरे से बाहर निकले और बड़े इतमिनान से घर चले। आज उन्हें सच्ची विजय की प्रसन्नता का अनुभव हुआ। उन्हें ऐसी ख़ुशी कभी नहीं प्राप्त हुई थी। यही उनके जीवन की पहली जीत थी।

ज़िहाद
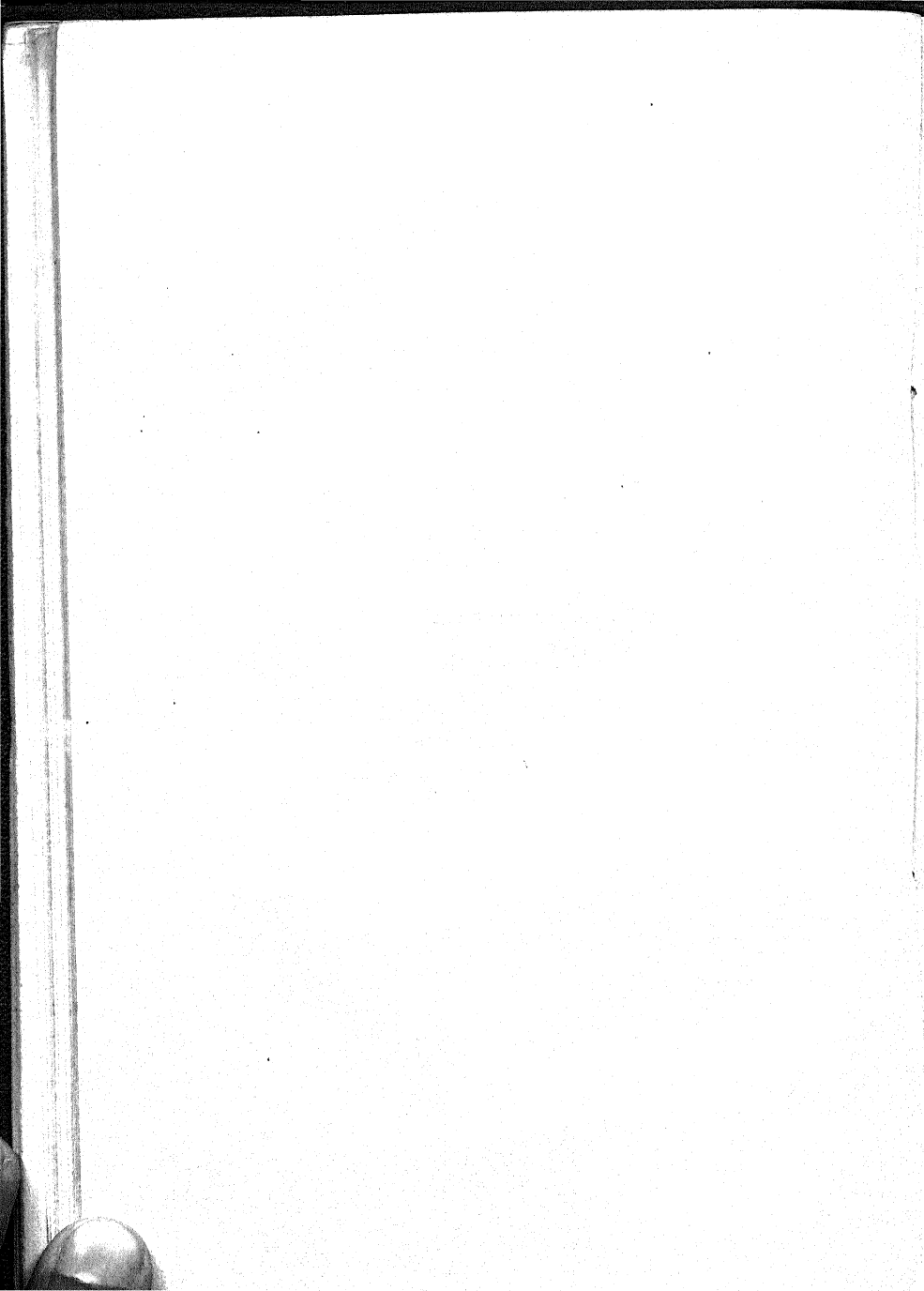
१

बहुत पुरानी बात है। हिन्दुओं का एक काफिला अपने धर्म की रक्षा के लिए पश्चिमोत्तर के पर्वत-प्रदेश से भागा चला आ रहा था। मुद्दतों से उस प्रान्त में हिन्दू और मुसलमान साथ-साथ रहते चले आये थे। धार्मिक द्वेष का नाम न था। पठानों के जिरगे हमेशा लड़ते रहते थे। उनकी तलवारों पर कभी जङ्ग न लगने पाता था। बात-बात पर उनके दल संगठित हो जाते थे। शासन की कोई व्यवस्था न थी। हरएक जिरगे और कबीले की व्यवस्था अलग थी। आपस के झगड़ों को निपटाने का भी तलवार के सिवा और कोई साधन न था। जान का बदला

जान था, ख़ून का बदला ख़ून ; इस नियम में कोई अपवाद न था । यही उनका धर्म था, यही ईमान । मगर उस भीषण रक्त-पात में भी हिन्दू-परिवार शान्ति से जीवन व्यतीत करते थे । पर एक महीने से देश की हालत बदल गई है । एक मुल्ला ने न-जाने कहाँ से आकर अनपढ़ धर्म-शून्य पठानों में धर्म का भाव जागृत कर दिया है । उसकी वाणी में कोई ऐसी मोहिनी है कि बूढ़े, जवान, स्त्री-पुरुष खिँचे चले आते हैं । वह शेरों की तरह गरजकर कहता है—'ख़ुदा ने तुम्हें इसलिए पैदा किया है कि दुनिया को इस्लाम की रोशनी से रोशन कर दो, दुनिया से कुफ़्र का निशान मिटा दो । एक काफ़िर के दिल को इस्लाम के उजाले से रोशन कर देने का सवाब सारी उम्र के रोज़े, नमाज़ और ज़कात से कहीं ज्यादा है, जन्नत की हूरें तुम्हारी बलाएँ लेंगी और फ़रिश्ते तुम्हारे क़दमों की ख़ाक माथे पर मलेंगे, ख़ुदा ख़ुद तुम्हारी पेशानी पर बोसे देगा ।' और सारी जनता यह आवाज़ सुनकर मज़हब के नारों से मतवाली हो जाती है । इसी धार्मिक उत्तेजना ने कुफ़्र और इस्लाम का भेद उत्पन्न कर दिया है । प्रत्येक पठान जन्नत का सुख भोगने के लिए अधीर हो उठा है । उन्हीं हिन्दुओं पर जो सदियों से शान्ति के साथ रहते थे, हमले होने

लगे हैं। कहीं उनके मन्दिर ढाये जाते हैं, कहीं उनके देवताओं को गालियाँ दी जाती हैं। कहीं उन्हें ज़बरदस्ती इस्लाम की दीक्षा दी जाती है। हिन्दू संख्या में कम हैं, असङ्गठित हैं, बिखरे हुए हैं, इस नई परिस्थिति के लिए बिलकुल तैयार नहीं। उनके हाथ-पाँव फूले हुए हैं, कितने ही तो अपनी जमा-जथा छोड़कर भाग खड़े हुए हैं, कुछ छिपे हुए इस आँधी के शान्त हो जाने का अवसर देख रहे हैं। यह काफ़िला भी उन्हीं भागनेवालों में था। दोपहर का समय था। आसमान से आग बरस रही थी। पहाड़ों से ज्वाला-सी निकल रही थी। वृक्ष का कहीं नाम न था। ये लोग राज-पथ से हटे हुए, पेचीदा औघट रास्तों से चले आ रहे थे। पग-पग पर पकड़ लिये जाने का खटका लगा हुआ था। यहाँ तक कि भूख, प्यास और ताप से विकल होकर अन्त को लोग एक उभरी हुई शिला की छाँह में विश्राम करने लगे। सहसा कुछ दूर पर एक कुँआ नज़र आया। वहीं डेरे डाल दिये। भय लगा हुआ था कि जेहादियों का कोई दल पीछे से न आ रहा हो। दो युवकों ने बंदूक़ें भरकर कन्धे पर रक्खीं और चारों तरफ़ गश्त करने लगे। बूढ़े कम्बल बिछाकर कमर सीधी करने लगे। स्त्रियाँ बालकों को गोद से उतारकर माथे का पसीना

पोंछने और बिखरे हुए केशों को सँभालने लगीं। सभी के चेहरे मुरझाये हुए थे। सभी चिन्ता और भय से त्रस्त हो रहे थे, यहाँ तक कि बच्चे भी ज़ोर से न रोते थे।

दोनों युवकों में एक लम्बा, गठीला, रूपवान् है। उसकी आँखों से अभिमान की रेखाएँ-सी निकल रही हैं, मानो वह अपने सामने किसी की हक़ीक़त नहीं समझता, मानो उसकी एक-एक गति पर आकाश के देवता जय-घोष कर रहे हैं। दूसरा छोटे क़द का, दुबला-पतला, रूपहीन-सा आदमी है, जिसके चेहरे से दीनता झलक रही है, मानो उसके लिए संसार में कोई आशा नहीं, मानो वह दीपक की भाँति रो-रोकर जीवन व्यतीत करने ही के लिए बनाया गया है। उसका नाम धर्मदास है, इसका ख़ज़ाँचन्द।

धर्मदास ने बन्दूक़ को ज़मीन पर टिकाकर एक चट्टान पर बैठते हुए कहा—तुमने अपने लिए क्या सोचा ? कोई लाख-सवा लाख की सम्पत्ति रही होगी तुम्हारी ?

ख़ज़ाँचन्द ने उदासीन भाव से उत्तर दिया—लाख-सवा लाख की तो नहीं, हाँ पचास-साठ हज़ार की जरूर थी। तीस हज़ार तो नक़द ही थे।

'तो अब क्या करोगे ?'

'जो कुछ सिर पर आवेगा झेलूँगा। रावलपिंडी में

दो-चार सम्बन्धी हैं, शायद कुछ मदद करें। तुमने क्या सोचा है ?'

'मुझे क्या ग़म ! अपने दोनों हाथ अपने साथ हैं। वहाँ भी इन्हीं का सहारा था, आगे भी इन्हीं का सहारा है।'

'आज और कुशल से बीत जाय, तो फिर कोई भय नहीं।'

'मैं तो मना रहा हूँ कि एकाध शिकार मिल जाय। एक दरजन भी आ जायँ, तो भूनकर रख दूँ।'

इतने में चट्टानों के नीचे से एक युवती हाथ में लोटा और डोर लिये निकली और सामने कुँए की ओर चली। प्रभात की सुनहरी, मधुर अरुणिमा मूर्तिमान् हो गई थी।

दोनों युवक उसकी ओर बढ़े, लेकिन ख़ज़ाँचन्द तो दो-चार क़दम चलकर रुक गया, धर्मदास ने युवती के हाथ से लोटा-डोर ले लिया और ख़ज़ाँचन्द की ओर सगर्व नेत्रों से ताकता हुआ कुँए की ओर चला, ख़ज़ाँचन्द ने फिर बन्दूक़ सँभाली और अपनी झेंप मिटाने के लिए आकाश की ओर ताकने लगा। इसी तरह वह कितनी ही बार धर्मदास के हाथों पराजित हो चुका था। शायद उसे इसका अभ्यास हो गया था। अब इसमें लेश-मात्र भी सन्देह न था कि श्यामा का प्रेमपात्र धर्मदास है। ख़ज़ाँ-

चन्द की सारी सम्पत्ति धर्मदास के रूप-वैभव के आगे तुच्छ थी। परोक्ष ही नहीं, प्रत्यक्ष रूप से भी श्यामा कई बार ख़ज़ाँचन्द को हताश कर चुकी थी, पर वह अभागा निराश होकर भी न-जाने क्यों उस पर प्राण देता था। तीनों एक ही बस्ती के रहनेवाले, एक साथ खेलनेवाले थे। श्यामा के माता-पिता पहले ही मर चुके थे। उसकी बुआ ने उसका पालन-पोषण किया था। अब भी वह बुआ ही के साथ रहती थी। उसकी अभिलाषा थी कि ख़ज़ाँचन्द उसका दामाद हो, श्यामा सुख से रहे और उसे भी जीवन के अन्तिम दिनों के लिए कुछ सहारा हो जाय। लेकिन श्यामा धर्मदास पर रीझी हुई थी। उसे क्या ख़बर थी कि जिस व्यक्ति को वह पैरों से ठुकरा रही है, वही उसका एक मात्र अवलम्ब है। ख़ज़ाँचन्द ही वृद्धा का मुनीम, ख़ज़ांची, कारिन्दा सब कुछ था, और यह जानते हुए भी कि श्यामा उसे इस जीवन में नहीं मिल सकती। उसके धन का यह उपयोग न होता, तो वह शायद अब तक उसे लुटाकर फ़क़ीर हो जाता।

२

धर्मदास पानी लेकर लौट ही रहा था कि उसे पश्चिम की ओर से कई आदमी घोड़ों पर सवार आते दिखाई

दिये। ज़रा और समीप आने पर मालूम हुआ कि कुल पाँच आदमी हैं। उनकी बन्दूक़ों की नलियाँ धूप में साफ़ चमक रही थीं। धर्मदास पानी लिये हुए दौड़ा कि कहीं रास्ते ही में सवार उसे न पकड़ लें। लेकिन कन्धे पर बन्दूक़ और एक हाथ में लोटा-डोर लिये वह बहुत तेज़ न दौड़ सकता था। फ़ासला दो सौ गज़ से कम न था। रास्ते में पत्थरों के ढेर टूटे-फूटे पड़े हुए थे। भय होता था कि कहीं ठोकर न लग जाय, कहीं पैर न फिसल जाय। उधर सवार प्रतिक्षण समीप होते जाते थे। अरबी घोड़ों से उसका मुक़ाबला ही क्या, उस पर मंज़िलों का धावा हुआ। मुश्किल से पचास क़दम गया होगा कि सवार उसके सिर पर आ पहुँचे और तुरन्त उसे घेर लिया। धर्मदास बड़ा साहसी था; पर मृत्यु को सामने खड़ो देखकर उसकी आँखों में अँधेरा छा गया, उसके हाथ से बन्दूक़ छूटकर गिर पड़ी। पाँचों उसी के गाँव के महसूदी पठान थे। एक पठान ने कहा—उड़ा दो सिर मरदूद का। दग़ाबाज़ काफ़िर!

दूसरा—नहीं-नहीं, ठहरो अगर यह इस वक़्त भी इस्लाम कबूल कर ले, तो हम इसे मुआफ़ कर सकते हैं। क्यों धर्मदास, तुम्हें इस दग़ा की क्या सज़ा दी जाय?

हमने तुम्हें रात-भर का वक्त फ़ैसला करने के लिए दिया था। मगर तुम रात ही को हमसे दग़ा करके भाग निकले। इस दग़ा की सज़ा तो यही है कि तुम इसी वक्त जहन्नुम पहुँचा दिये जाओ, लेकिन हम तुम्हें फिर एक मौक़ा देते हैं। वह आख़िरी मौक़ा है। अगर तुमने अब भी इस्लाम न क़बूल किया, तो तुम्हें दिन की रोशनी देखनी नसीब न होगी।

धर्मदास ने हिचकिचाते हुए कहा—जिस बात को अक्ल नहीं मानती, उसे कैसे.....

पहले सवार ने आवेश में आकर कहा—मज़हब को अक्ल से कोई वास्ता नहीं।

तीसरा—कुफ़्र है! कुफ़्र है!

पहला—उड़ा दो सिर मरदूद का, धुआँ इस पार।

दूसरा—ठहरो-ठहरो, मार डालना मुश्किल नहीं, जिला लेना मुश्किल है। तुम्हारे और साथी कहाँ हैं धर्मदास?

धर्मदास—सब मेरे साथ ही हैं।

दूसरा—कलामे शरीफ़ की क़सम, अगर तुम सब ख़ुदा और उसके रसूल पर ईमान लाओ, तो कोई तुम्हें तेज़ निगाहों से देख भी न सकेगा।

धर्मदास—आप लोग सोचने के लिए और कुछ मौक़ा न देंगे?

इस पर चारों सवार चिल्ला उठे—नहीं, नहीं, हम तुम्हें न जाने देंगे, यह आख़िरी मौक़ा है।

इतना कहते ही पहले सवार ने बन्दूक़ छतिया ली और नली धर्मदास की छाती की ओर करके बोला—बस बोलो, क्या मंज़ूर है ?

धर्मदास सिर से पैर तक काँपकर बोला—अगर मैं इस्लाम कबूल कर लूँ, तो मेरे साथियों को तो कोई तकलीफ़ न दी जायगी ?

दूसरा—हाँ, अगर तुम ज़मानत करो कि वे भी इस्लाम क़बूल कर लेंगे।

पहला—हम इस शर्त को नहीं मानते। तुम्हारे साथियों से हम ख़ुद निपट लेंगे। तुम अपनी कहो, क्या चाहते हो ? हाँ या नहीं ?

धर्मदास ने ज़हर का घूँट पीकर कहा—मैं ख़ुदापर ईमान लाता हूँ।

पाँचों ने एक स्वर से कहा—अलहम्द व लिल्लाह ! और बारी-बारी से धर्मदास को गले लगाया।

३

श्यामा हृदय को दोनों हाथों से थामे यह दृश्य देख रही थी। वह मन में पछता रही थी कि मैंने क्यों इन्हें

पानी लाने भेजा। अगर मालूम होता कि विधि यों धोखा देगा, तो मैं प्यासों मर जाती; पर इन्हें न जाने देती। श्यामा से कुछ दूर खज़ाँचन्द भी खड़ा था। श्यामा ने उसकी ओर क्षुब्ध नेत्रों से देखकर कहा—अब इनकी जान बचती नहीं मालूम होती।

खज़ाँचन्द—बन्दूक़ भी हाथ से छूट पड़ी है।

श्यामा—न-जाने क्या बातें हो रही हैं। अरे ग़ज़ब! दुष्ट ने उनकी ओर बन्दूक़ तानी है।

खज़ाँ०—ज़रा और समीप आ जायँ, तो मैं बन्दूक़ चलाऊँ। इतनी दूर की मार इसमें नहीं है।

श्यामा—अरे! देखो वे सब धर्मदास को गले लगा रहे हैं। यह माजरा क्या है?

खज़ाँ०—कुछ समझ में नहीं आता।

श्यामा—कहीं इसने क़लमा तो नहीं पढ़ लिया?

खज़ाँ०—नहीं, ऐसा क्या होगा। धर्मदास से मुझे ऐसी आशा नहीं है।

श्यामा—मैं समझ गई। ठीक यही बात है। बन्दूक़ चलाओ।

खज़ाँ०—धर्मदास बीच में हैं। कहीं उन्हें न लग जाय।

श्यामा—कोई हर्ज नहीं। मैं चाहती हूँ, पहला निशाना

धर्मदास ही पर पड़े। कायर! निर्लज्ज! प्राणों के लिए धर्म त्याग दिया! ऐसी बेहयाई की ज़िन्दगी से मर जाना कहीं अच्छा है। क्या सोचते हो? क्या तुम्हारे हाथ-पाँव भी फूल गये? लाओ बन्दूक़ मुझे दे दो। मैं इस कायर को अपने हाथों से मारूँगी।

ख़ज़ाँ०—मुझे तो विश्वास नहीं होता कि धर्मदास...

श्यामा—तुम्हें कभी विश्वास न आवेगा। लाओ बन्दूक़ मुझे दे दो। खड़े ताकते हो। क्या जब वे सिर पर आ जायँगे तब बन्दूक़ चलाओगे? क्या तुम्हें भी यही मंज़ूर है कि मुसलमान होकर जान बचाओ? अच्छी बात है, जाओ श्यामा अपनी रक्षा आप कर सकती है। मगर उसे अब मुँह न दिखाना।

ख़ज़ाँचन्द ने बन्दूक़ चलाई। एक सवार की पगड़ी को उड़ाती हुई गोली निकल गई। जेहादियों ने 'अल्लाहो-अकबर!' की हाँक लगाई। दूसरी गोली चली और एक घोड़े की छाती पर बैठी। घोड़ा वहीं गिर पड़ा। जेहादियों ने फिर 'अल्लाहो अकबर!' की सदा लगाई और आगे बढ़े। तीसरी गोली आई। एक पठान लोट गया। पर इसके पहले कि चौथी गोली छूटे, पठान ख़ज़ाँचन्द के सिर पर पहुँच गये और बन्दूक़ उसके हाथ से छीन ली।

एक सवार ने ख़ज़ाँचन्द की ओर बन्दूक तानकर कहा—उड़ा दूँ सिर मरदूद का? इससे ख़ून का बदला लेना है!

दूसरे सवार ने जो इनका सरदार मालूम होता था कहा—नहीं-नहीं, यह दिलेर आदमी है। ख़ज़ाँचन्द, तुम्हारे ऊपर दग़ा, ख़ून और कुफ्र, ये तीन इल्ज़ाम हैं, और तुम्हें क़त्ल कर देना ऐन सवाब है, लेकिन हम तुम्हें एक मौक़ा और देते हैं। अगर तुम अब भी ख़ुदा और रसूल पर ईमान लाओ, तो हम तुम्हें सीने से लगाने को तैयार हैं। इसके सिवा तुम्हारे गुनाहों का और कोई कफ़ारा (प्रायश्चित्त) नहीं है। यह हमारा आख़िरी फ़ैसला है। बोलो, क्या मंज़ूर है?

चारों पठानों ने कमर से तलवारें निकाल लीं और उन्हें ख़ज़ाँचन्द के सिर पर तान दिया, मानो 'नहीं' का शब्द मुँह से निकलते ही चारों तलवारें उसके गर्दन पर चल जायँगी।

ख़ज़ाँचन्द का मुखमण्डल विलक्षण तेज से आलोकित हो उठा। उसकी दोनों आँखें स्वर्गीय ज्योति से चमकने लगीं। दृढ़ता से बोला—तुम एक हिन्दू से यह प्रश्न कर रहे हो? क्या तुम समझते हो कि जान के ख़ौफ़ से वह

अपना ईमान बेच डालेगा ? हिन्दू को अपने ईश्वर तक पहुँचने के लिए किसी नबी, वली या पैग़म्बर की ज़रूरत नहीं !

चारो पठानों ने कहा—काफ़िर ! काफ़िर !

ख़ज़ाँ०—अगर तुम मुझे काफ़िर समझते हो, तो समझो। मैं अपने को तुमसे ज्यादा ख़ुदा-परस्त समझता हूँ। मैं उस धर्म को मानता हूँ, जिसकी बुनियाद अक़्ल पर है। आदमी में अक़्ल ही ख़ुदा का नूर (प्रकाश) है और हमारा ईमान हमारी अक़्ल. ......

चारों पठानों के मुँह से निकला 'काफ़िर ! काफ़िर !' और चारों तलवारें एक साथ ख़ज़ाँचन्द की गर्दन पर गिर पड़ीं। लाश ज़मीन पर फड़कने लगी। धर्मदास सिर झुकाये खड़ा रहा। वह दिल में ख़ुश था कि अब ख़ज़ाँचन्द की सारी सम्पत्ति उसके हाथ लगेगी और वह श्यामा के साथ सुख से रहेगा ; पर विधाता को कुछ और ही मंजूर था। श्यामा अब तक मर्माहत-सी खड़ी यह दृश्य देख रही थी। ज्यों ही ख़ज़ाँचन्द ज़मीन पर गिरा, वह झपटकर लाश के पास आई और उसे गोद में लेकर आँचल से रक्त-प्रवाह को रोकने की चेष्टा करने लगी। उसके सारे कपड़े ख़ून से तर हो गये। उसने बड़ी सुन्दर बेल-बूटोंवाली साड़ियाँ पहनी

होंगी; पर इस रक्त-रञ्जित साड़ी की शोभा अतुलनीय थी। बेल-बूटोंवाली साड़ियाँ रूप की शोभा बढ़ाती थीं, यह रक्त-रञ्जित साड़ी आत्मा की छवि दिखा रही थी।

ऐसा जान पड़ा, मानो खज़ाँचन्द की बुझती आँखें एक अलौकिक ज्योति से प्रकाशमान् हो गई हैं। उन नेत्रों में कितना सन्तोष, कितनी तृप्ति, कितनी उत्कण्ठा भरी हुई थी। जीवन में जिसने प्रेम की भिक्षा भी न पाई, वह मरने पर उत्सर्ग जैसे स्वर्गीय रत्न का स्वामी बना हुआ था।

४

धर्मदास ने श्यामा का हाथ पकड़कर कहा—श्यामा, होश में आओ, तुम्हारे सारे कपड़े खून से तर हो गये हैं। अब रोने से क्या हासिल होगा? ये लोग हमारे मित्र हैं, हमें कोई कष्ट न देंगे। हम फिर अपने घर चलेंगे और जीवन के सुख भोगेंगे।

श्यामा ने तिरस्कार-पूर्ण नेत्रों से देखकर कहा—तुम्हें अपना घर बहुत प्यारा है, तो जाओ। मेरी चिन्ता मत करो। मैं अब न जाऊँगी। हाँ, अगर अब भी मुझसे कुछ प्रेम हो, तो इन लोगों से! इन्हीं तलवारों से मेरा भी अन्त करा दो।

धर्मदास करुणा-कातर स्वर से बोला—श्यामा, यह तुम क्या कहती हो, तुम भूल गईं कि हमसे-तुमसे क्या बातें हुई थीं ? मुझे ख़ुद ख़ज़ाँचन्द के मारे जाने का शोक है; पर भावी को कौन टाल सकता है ?

श्यामा—अगर यह भावी थी, तो यह भी भावी है कि मैं अपना अधम जीवन उस पवित्र आत्मा के शोक में काटूँ, जिसका मैंने सदैव निरादर किया।

यह कहते-कहते श्यामा का शोकोद्गार, जो अब तक क्रोध और घृणा के नीचे दबा हुआ था, उबल पड़ा और वह ख़ज़ाँचन्द के निस्पन्द हाथों को अपने गले में डालकर रोने लगी।

चारों पठान यह अलौकिक अनुराग और आत्म-समर्पण देखकर करुणार्द्र हो गये। सरदार ने धर्मदास से कहा—तुम इस पाकीज़ा ख़ातून से कहो, हमारे साथ चले। हमारी ज़ात से इसे कोई तकलीफ़ न होगी। हम इसकी दिल से इज्ज़त करेंगे।

धर्मदास के हृदय में ईर्ष्या की आग धधक रही थी। वही रमणी, जिसे वह अपनी समझे बैठा था, इस वक्त उसका मुँह भी नहीं देखना चाहती थी। बोला—श्यामा, तुम चाहे इस लाश पर आँसुओं की नदी बहा दो; पर यह

ज़िन्दा न होगी। यहाँ से चलने की तैयारी करो। मैं साथ के और लोगों को भी जाकर समझाता हूँ। ये ख़ान लोग हमारी रक्षा करने का ज़िम्मा ले रहे हैं। हमारी जायदाद, ज़मीन, दौलत सब हमको मिल जायगी। ख़ज़ाँचन्द की दौलत के भी हमीं मालिक होंगे। अब देर न करो। रोने-धोने से अब कुछ हासिल नहीं।

श्यामा ने धर्मदास को आग्नेय नेत्रों से देखकर कहा—और इस वापसी की क़ीमत क्या देनी होगी? वही जो तुमने दी है?

धर्मदास यह व्यंग न समझ सका। बोला—मैंने तो कोई क़ीमत नहीं दी। मेरे पास था ही क्या।

श्यामा—ऐसा न कहो। तुम्हारे पास वह ख़ज़ाना था, जो तुम्हें आज कई लाख वर्ष हुए ऋषियों ने प्रदान किया था, जिसकी रक्षा रघु और मनु, राम और कृष्ण, बुद्ध और शङ्कर, शिवाजी और गोविन्दसिंह ने की थी। उस अमूल्य भाण्डार को आज तुमने तुच्छ प्राणों के लिए खो दिया। इन पाँवों घर लौटना तुम्हें मुबारक हो। तुम शौक़ से जाओ। जिन तलवारों ने वीर ख़ज़ाँचन्द के जीवन का अन्त किया, उन्हींने मेरे प्रेम का भी फ़ैसला कर दिया। जीवन में इस वीरात्मा का मैंने जो निरादर और अपमान किया, इसके

साथ जो उदासीनता दिखाई, उसका अब मरने के बाद प्रायश्चित्त करूँगी। यह धर्म पर मरनेवाला वीर था, धर्म को बेचनेवाला कायर नहीं। अगर तुममें अब भी कुछ शर्म और हया है, तो इसका क्रिया-कर्म करने में मेरी मदद करो और यदि तुम्हारे स्वामियों को यह भी पसन्द न हो, तो रहने दो, मैं ख़ुद सब कुछ कर लूँगी।

पठानों के हृदय दर्द से तड़फ उठे। धर्मान्धता का प्रकोप शान्त हो गया। देखते-देखते वहाँ लकड़ियों का ढेर लग गया। धर्मदास ग्लानि से सिर झुकाये बैठा था और चारों पठान लकड़ियाँ काट रहे थे। चिता तैयार हुई और जिन निर्दय हाथों ने ख़ज़ाँचन्द की जान ली थी, उन्हीं ने उसके शव को चिता पर रक्खा। ज्वाला प्रचण्ड हुई। अग्निदेव अपने अग्नि-मुख से उस धर्म-वीर का यश गा रहे थे!

५

पठानों ने ख़ज़ाँचन्द की सारी जङ्गम सम्पत्ति लाकर श्यामा को दे दी। श्यामा ने वहीं एक छोटा-सा मकान बनवाया और वीर ख़ज़ाँचन्द की उपासना में जीवन के दिन काटने लगी। उसकी वृद्धा बुआ तो उसके साथ रह गई और सब लोग पठानों के साथ लौट गये; क्योंकि अब

मुसलमान होने की शर्त न थी। ख़ज़ाँचन्द के बलिदान ने धर्म के भूत को परास्त कर दिया। मगर धर्मदास को पठानों ने इस्लाम की दीक्षा लेने पर मजबूर किया। एक दिन नियत किया गया। मसजिद में मुल्लाओं का मेला लगा, और लोग धर्मदास को उसके घर से बुलाने आये। पर उसका वहाँ पता न था। चारों तरफ़ तलाश हुई। कहीं निशान न मिला।

साल-भर गुज़र गया। सन्ध्या का समय था। श्यामा अपने झोपड़े के सामने बैठी भविष्य की मधुर कल्पनाओं में मग्न थी। अतीत उसके लिए दुःख से भरा हुआ था। वर्तमान केवल एक निराशामय स्वप्न था। सारी अभिलाषाएँ भविष्य पर अवलम्बित थीं। और भविष्य भी वह जिसका इस जीवन से कोई सम्बन्ध न था। आकाश पर लालिमा छाई हुई थी। सामने की पर्वतमाला स्वर्णमयी शान्ति के आवरण से ढकी हुई थी। वृक्षों की काँपती हुई पत्तियों से सरसराहट की आवाज़ निकल रही थी, मानो कोई वियोगी आत्मा पत्तियों पर बैठी हुई सिसकियाँ भररही हो।

उसी वक्त एक भिखारी फटे हुए कपड़े पहने झोपड़ी के सामने खड़ा हो गया। कुत्ता ज़ोर से भूँक उठा। श्यामा ने चौंककर देखा और चिल्ला उठी—धर्मदास!

धर्मदास ने वहीं ज़मीन पर बैठते हुए कहा—हाँ श्यामा, मैं अभागा धर्मदास ही हूँ। साल-भर से मारा-मारा फिर रहा हूँ। मुझे खोज निकालने के लिए इनाम रख दिया गया है। सारा प्रान्त मेरे पीछे पड़ा हुआ है। इस जीवन से अब ऊब उठा हूँ। पर मौत भी नहीं आती।

धर्मदास एक क्षण के लिए चुप हो गया। फिर बोला—क्यों श्यामा, क्या अभी तुम्हारा दिल मेरी तरफ़ से साफ़ नहीं हुआ? तुमने मेरा अपराध क्षमा नहीं किया?

श्यामा ने उदासीन भाव से कहा—मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझी।

'मैं अब भी हिन्दू हूँ। मैंने इस्लाम नहीं क़बूल किया है।'

'जानती हूँ।'

'यह जानकर भी तुम्हें मुझ पर दया नहीं आती?'

श्यामा ने कठोर नेत्रों से देखा और उत्तेजित होकर बोली—तुम्हें अपने मुँह से ऐसी बातें निकालते शर्म नहीं आती! मैं उस धर्मवीर की ब्याहता हूँ जिसने हिन्दू-जाति का मुख उज्ज्वल किया है। तुम समझते हो कि वह मर गया? यह तुम्हारा भ्रम है। वह अमर है। मैं इस समय

भी उसे स्वर्ग में बैठा देख रही हूँ। तुमने हिन्दू-जाति को कलङ्कित किया है। मेरे सामने से दूर हो जाओ।

धर्मदास ने कुछ जवाब न दिया। चुपके से उठा, एक लम्बी साँस ली और एक तरफ़ चल दिया।

प्रातःकाल श्यामा पानी भरने जा रही थी तब उसने रास्ते में एक लाश पड़ी हुई देखी। दो-चार गिद्ध उस पर मँडरा रहे थे। उसका हृदय धड़कने लगा। समीप जाकर देखा और पहचान गई। यह धर्मदास की लाश थी!

मंत्र
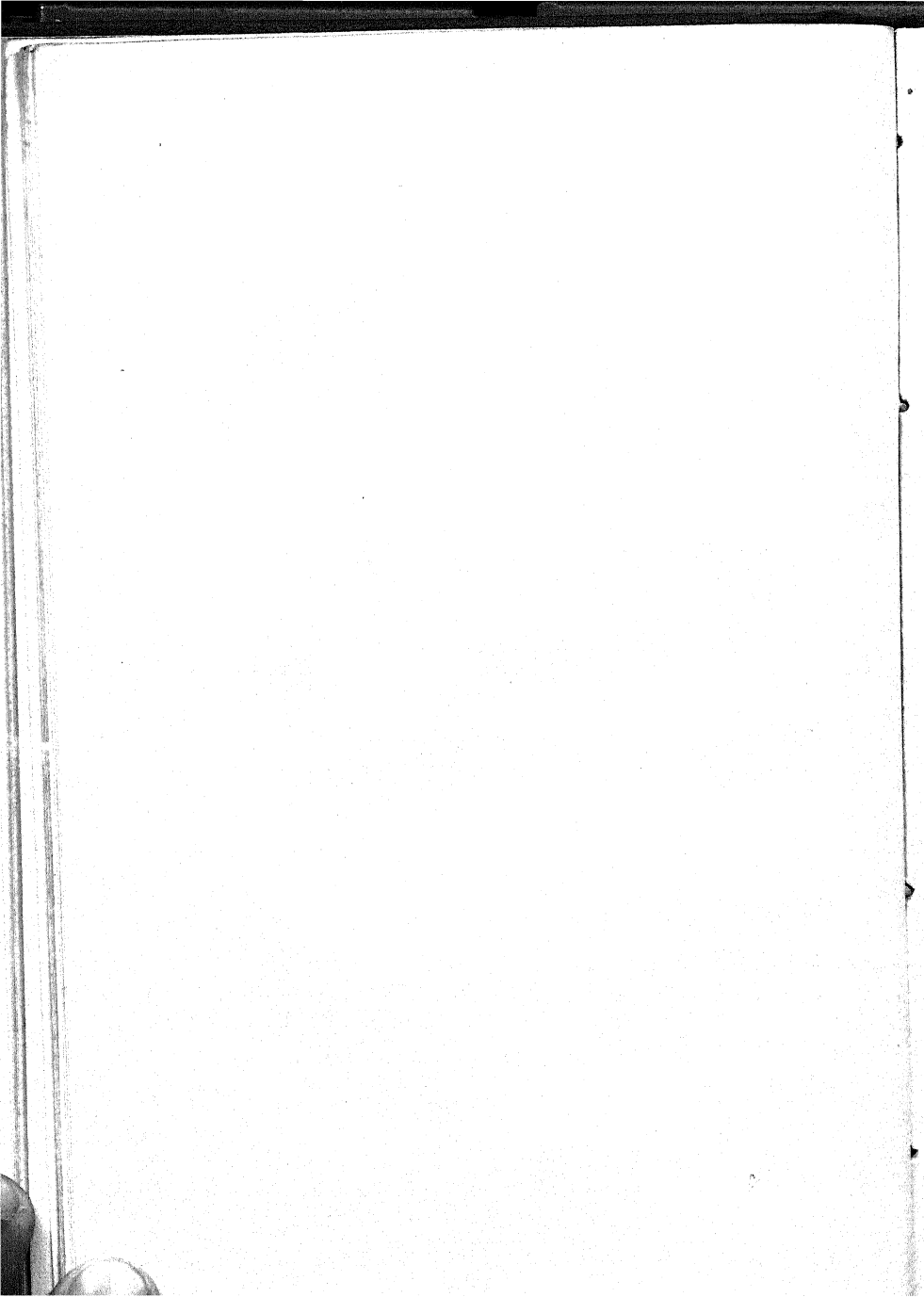
१

सन्ध्या का समय था। डाक्टर चड्ढा गोल्फ़ खेलने को तैयार हो रहे थे। मोटर द्वार के सामने खड़ी थी कि दो कहार एक डोली लिये आते दिखाई दिये। डोली के पीछे एक बूढ़ा लाठी टेकता चला आता था। डोली औषधालय के सामने आकर रुक गई। बूढ़े ने धीरे-धीरे आकर द्वार पर पड़ी हुई चिक से झाँका। ऐसी साफ़-सुथरी जमीन पर पैर रखते हुए भय हो रहा था कि कोई घुड़क न बैठे। डाक्टर साहब को मेज़ के सामने खड़े देखकर भी उसे कुछ कहने का साहस न हुआ।

डाक्टर साहब ने चिक के अन्दर से गरजकर कहा—कौन है? क्या चाहता है?

बूढ़े ने हाथ जोड़कर कहा—हजूर बड़ा गरीब आदमी हूँ। मेरा लड़का कई दिन से……

डाक्टर साहब ने सिगार जलाकर कहा—कल सबेरे आओ, कल सबेरे ; हम इस वक्त मरीज़ों को नहीं देखते।

बूढ़े ने घुटने टेककर जमीन पर सिर रख दिया और बोला—दुहाई है सरकार की, लड़का मर जायगा। हजूर, चार दिन से आँखें नहीं……

डाक्टर चड्ढा ने कलाई पर नज़र डाली। केवल १० मिनट समय और बाकी था। गोल्फ़-स्टिक खूँटी से उतारते हुए बोले—कल सबेरे आओ, कल सबेरे; यह हमारे खेलने का समय है।

बूढ़े ने पगड़ी उतारकर चौखट पर रख दी और रोकर बोला—हजूर एक निगाह देख लें। बस एक निगाह! लड़का हाथ से चला जायगा हजूर, सात लड़कों में यही एक बच रहा है हजूर, हम दोनों आदमी रो-रोकर मर जायँगे, सरकार, आपकी बढ़ती होय, दीनबन्धु।

ऐसे उजड्ड देहाती यहाँ प्रायः रोज़ ही आया करते थे। डाक्टर साहब उनके स्वभाव से खूब परिचित थे। कोई कितना ही कुछ कहे; पर वे अपनी ही रट लगाते जायँगे। किसी की सुनेंगे नहीं। धीरे से चिक उठाई और बाहर

निकलकर मोटर की तरफ चले। बूढ़ा यह कहता हुआ उनके पीछे दौड़ा—सरकार बड़ा धरम होगा, हजूर दया कीजिये, बड़ा दीन-दुखी हूँ, संसार में कोई और नहीं है, बाबूजी !

मगर डाक्टर साहब ने उसकी ओर मुँह फेरकर देखा तक नहीं। मोटर पर बैठकर बोले—कल सबेरे आना।

मोटर चली गई। बूढ़ा कई मिनट तक मूर्ति की भाँति निश्चल खड़ा रहा। संसार में ऐसे मनुष्य भी होते हैं, जो अपने आमोद-प्रमोद के आगे किसी की जान की भी परवा नहीं करते, शायद इसका उसे अब भी विश्वास न आता था। सभ्य-संसार इतना निर्मम, इतना कठोर है, इसका ऐसा मर्मभेदी अनुभव अब तक न हुआ था। वह उन पुराने जमाने के जीवों में था, जो लगी हुई आग को बुझाने, मुर्दे को कंधा देने, किसी के छप्पर को उठाने और किसी कलह को शान्त करने के लिये सदैव तैयार रहते थे। जब तक बूढ़े को मोटर दिखाई दी, वह खड़ा टकटकी लगाये उस ओर ताकता रहा। शायद उसे अब भी डाक्टर साहब के लौट आने की आशा थी। फिर उसने कहारों से डोली उठाने को कहा। डोली जिधर से आई थी, उधर ही चली गई। चारों ओर से निराश होकर वह डाक्टर चड्ढा के पास

आया था। इनकी बड़ी तारीफ़ सुनी थी। यहाँ से निराश होकर फिर वह किसी दूसरे डाक्टर के पास न गया। किस्मत ठोक ली।

उसी रात को उसका हँसता-खेलता सात साल का बालक अपनी बाल-लीला समाप्त करके इस संसार से सिधार गया। बूढ़े माँ-बाप के जीवन का यही एक आधार था। इसी का मुँह देखकर जीते थे। इस दीपकके बुझते ही जीवन की अँधेरी रात भाँय-भाँय करने लगी। बुढ़ापे की विशाल ममता टूटे हुए हृदय से निकलकर उस अन्धकार में आर्त-स्वर से रोने लगी।

२

कई साल गुज़र गये। डाक्टर चड्ढा ने ख़ूब यश और धन कमाया ; लेकिन इसके साथ ही अपने स्वास्थ्य की रक्षा भी की, जो एक असाधारण बात थी। यह उनके नियमित जीवन का आशीर्वाद था कि ५० वर्ष की अवस्था में उनकी चुस्ती और फुर्ती युवकों को भी लज्जित करती थी। उनके हरएक काम का समय नियत था। इस नियम से वह जौ-भर भी न टलते थे। बहुधा लोग स्वास्थ्य के नियमों का पालन उस समय करते हैं, जब रोगी हो जाते हैं।

डाक्टर चड्ढा उपचार और संयम का रहस्य खूब समझते थे। उनकी संतान-संख्या भी इसी नियम के अधीन थी। उनके केवल दो बच्चे हुए, एक लड़का और एक लड़की। तीसरी सन्तान न हुई। इसलिये श्रीमती चड्ढा भी अभी जवान मालूम होती थीं। लड़की का तो विवाह हो चुका था। लड़का कालेज में पढ़ता था। वही माता-पिता के जीवन का आधार था। शील और विनय का पुतला, बड़ा ही रसिक, बड़ा ही उदार, विद्यालय का गौरव, युवक-समाज की शोभा, मुख-मण्डल से तेज की छटा-सी निकलती थी। आज उसी की बीसवीं साल-गिरह थी।

सन्ध्या का समय था। हरी-हरी घास पर कुरसियाँ बिछी हुई थीं। शहर के रईस और हुक्काम एक तरफ, कालेज के छात्र दूसरी तरफ, बैठे भोजन कर रहे थे। बिजली के प्रकाश से सारा मैदान जगमगा रहा था। आमोद-प्रमोद का सामान भी जमा था। छोटा-सा प्रहसन खेलने की तैयारी थी। प्रहसन स्वयं कैलासनाथ ने लिखा था। वही मुख्य ऐक्टर भी था। इस समय वह एक रेशमी कमीज पहने, नंगे सिर, नंगे पाँव, इधर-से-उधर मित्रों की आव-भगत में लगा हुआ था। कोई पुकारता—कैलास, जरा इधर आना; कोई उधर से बुलाता—कैलास, क्या

उधर ही रहोगे। सभी उसे छेड़ते थे, चुहलें करते थे। बेचारे को ज़रा दम मारने का अवकाश न मिलता था।

सहसा एक रमणी ने उसके पास आकर कहा—क्यों कैलास, तुम्हारे साँप कहाँ हैं? ज़रा मुझे दिखा दो।

कैलास ने उससे हाथ हिलाकर कहा—मृणालिनी, इस वक्त क्षमा करो, कल दिखा दूँगा।

मृणालिनी ने आग्रह किया—जी नहीं, तुम्हें दिखाना पड़ेगा, मैं आज नहीं मानने की, तुम रोज़ कल-कल करते रहते हो।

मृणालिनी और कैलास दोनों सहपाठी थे और एक दूसरे के प्रेम में पगे हुए। कैलास को साँपों के पालने, खेलाने और नचाने का शौक था। तरह-तरह के साँप पाल रक्खे थे। उनके स्वभाव और चरित्र की परीक्षा करते रहते थे। थोड़े दिन हुए, उन्होंने विद्यालय में 'साँपों' पर एक मारके का व्याख्यान दिया था। साँपों को नचाकर दिखाया भी था। प्राणि-शास्त्र के बड़े-बड़े पण्डित भी यह व्याख्यान सुनकर दंग रह गये थे। यह विद्या उसने एक बूढ़े सपेरे से सीखी थी। साँपों की जड़ी-बूटियाँ जमा करने का उसे मरज़ था। इतना पता-भर मिल जाय कि किसी व्यक्ति के पास कोई अच्छी जड़ी है, फिर उसे चैन न आता था। उसे लेकर ही छोड़ता था। यही व्यसन

था। इस पर हजारों रुपये फूँक चुका था। मृणालिनी कई बार आ चुकी थी; पर कभी साँपों के देखने के लिये इतनी उत्सुक न हुई थी। कह नहीं सकते, आज उसकी उत्सुकता सचमुच जाग गई थी, या वह कैलास पर अपने अधिकार का प्रदर्शन करना चाहती थी; पर उसका आग्रह बेमौक़ा था। उस कोठरी में कितनी भीड़ लग जायेगी, भीड़ को देखकर साँप कितने चौंकेंगे और रात के समय उन्हें छेड़ा जाना कितना बुरा लगेगा, इन बातों का उसे ज़रा भी ध्यान न आया।

कैलास ने कहा—नहीं, कल जरूर दिखा दूँगा। इस वक्त अच्छी तरह दिखा भी तो न सकूँगा, कमरे में तिल रखने की जगह भी न मिलेगी।

एक महाशय ने छेड़कर कहा—दिखा क्यों नहीं देते जी, ज़रा-सी बात के लिये इतना टालमटोल कर रहे हो। मिस गोविन्द, हर्गिज न मानना। देखें कैसे नहीं दिखाते!

दूसरे महाशय ने और रद्दा चढ़ाया—मिस गोविन्द इतनी सीधी और भोली हैं तभी आप इतना मिज़ाज करते हैं। दूसरी सुन्दरी होती, तो इसी बात पर बिगड़ खड़ी होती।

तीसरे साहब ने मज़ाक उड़ाया—अजी बोलना छोड़ देती। भला कोई बात है! इस पर आपको दावा है कि मृणालिनी के लिये जान हाज़िर है।

मृणालिनी ने देखा कि ये शोहदे उसे चंग पर चढ़ा रहे हैं, तो बोली—आप लोग मेरी वकालत न करें, मैं खुद अपनी वकालत कर लूँगी। मैं इस वक्त साँपों का तमाशा नहीं देखना चाहती। चलो छुट्टी हुई।

इस पर मित्रों ने ठट्ठा लगाया। एक साहब बोले—देखना तो आप सब कुछ चाहें, पर कोई दिखाये भी तो?

कैलास को मृणालिनी की झेंपी हुई सूरत देखकर मालूम हुआ कि इस वक्त उसका इनकार वास्तव में उसे बुरा लगा है। ज्यों ही प्रीति-भोज समाप्त हुआ और गाना शुरू हुआ, उसने मृणालिनी और अन्य मित्रों को साँपों के दरबे के सामने ले जाकर महुअर बजाना शुरू किया। फिर एक-एक खाना खोलकर एक-एक साँप को निकालने लगा। वाह! क्या कमाल था! ऐसा जान पड़ता था कि ये कीड़े उसकी एक-एक बात, उसके मन का एक-एक भाव समझते हैं। किसी को उठा लिया, किसी को गरदन में डाल लिया, किसी को हाथ में लपेट लिया। मृणालिनी बार-बार मना करती कि इन्हें गरदन में न डालो, दूर ही से दिखा दो। बस ज़रा नचा दो। कैलास की गरदन में साँपों को लिपटते देखकर उसकी जान निकली जाती थी। पछता रही थी कि मैंने व्यर्थ ही इनसे साँप दिखाने को कहा; मगर कैलास एक न

सुनता था। प्रेमिका के सम्मुख अपनी सर्प-कला-प्रदर्शन का ऐसा अवसर पाकर वह कब चूकता। एक मित्र ने टीका की—दाँत तोड़ डाले होंगे?

कैलास हँसकर बोला—दाँत तोड़ डालना मदारियों का काम है। किसी के दाँत नहीं तोड़े गये। कहिए तो दिखा दूँ? यह कहकर उसने एक काले साँप को पकड़ लिया और बोला—मेरे पास इससे बड़ा और जहरीला साँप दूसरा नहीं है। अगर किसी को काटले, तो आदमी आनन-फ़ानन मर जाय। लहर भी न आये। इसके काटे का मंत्र नहीं। इसके दाँत दिखा दूँ?

मृणालिनी ने उसका हाथ पकड़कर कहा—नहीं, नहीं, कैलास, ईश्वर के लिये इसे छोड़ दो! तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ!

इस पर एक दूसरे मित्र बोले—मुझे तो विश्वास नहीं आता, लेकिन तुम कहते हो तो मान लूँगा।

कैलास ने साँप की गरदन पकड़कर कहा—नहीं साहब, आप आँखों से देखकर मानिये। दाँत तोड़कर बस में किया, तो क्या किया। साँप बड़ा समझदार होता है। अगर उसे विश्वास हो जाय कि इस आदमी से मुझे कोई हानि न पहुँचेगी, तो वह उसे हर्गिज़ न काटेगा।

मृणालिनी ने जब देखा कि कैलास पर इस वक्त भूत

सवार है; तो उसने यह तमाशा बंद करने के विचार से कहा—अच्छा भई, अब यहाँ से चलो, देखो गाना शुरू हो गया। आज मैं भी कोई चीज सुनाऊँगी। यह कहते हुए उसने कैलास का कंधा पकड़कर चलने का इशारा किया और कमरे से निकल गई; मगर कैलास विरोधियों का शङ्का-समाधान करके ही दम लेना चाहता था। उसने साँप की गरदन पकड़कर ज़ोर से दबाई, इतनी ज़ोर से दबाई कि उसका मुँह लाल हो गया, देह की सारी नसें तन गईं। साँप ने अब तक उसके हाथों ऐसा व्यवहार न देखा था। उसकी समझ में न आता था कि यह मुझसे क्या चाहते हैं। उसे शायद भ्रम हुआ कि यह मुझे मार डालना चाहते हैं। अतएव वह आत्मरक्षा के लिये तैयार हो गया।

कैलास ने उसकी गरदन खूब दबाकर उसका मुँह खोल दिया और उसके ज़हरीले दाँत दिखाते हुए बोला—जिन सज्जनों को शक हो, आकर देख लें। आया विश्वास, या अब भी कुछ शक है? मित्रों ने आकर उसके दाँत देखे और चकित हो गये। प्रत्यक्ष प्रमाण के सामने सन्देह को स्थान कहाँ। मित्रों की शंका-निवारण करके कैलास ने साँप की गरदन ढीली कर दी और उसे जमीन पर रखना चाहा। पर वह काला गेहुवन क्रोध से पागल हो रहा था। गरदन

नरम पड़ते ही उसने सिर उठाकर कैलास की उँगली में ज़ोर से काटा और वहाँ से भागा। कैलास की उँगली से टप-टप खून टपकने लगा। उसने ज़ोर से उँगली दबा ली और अपने कमरे की तरफ दौड़ा। वहाँ मेज़ की दराज़ में एक जड़ी रक्खी हुई थी, जिसे पीसकर लगा देने से घातक विष भी रफू हो ज़ाता था। मित्रों में हलचल पड़ गई। बाहर महफ़िल में भी खबर हुई। डाक्टर साहब घबड़ाकर दौड़े। फौरन् उँगली की जड़ कसकर बाँधी गई और जड़ी पीसने के लिये दी गई। डाक्टर साहब जड़ी के क़ायल न थे। वह उँगली का डसा भाग नश्तर से काट देना चाहते थे; मगर कैलास को जड़ी पर पूर्ण विश्वास था। मृणालिनी प्यानो पर बैठी हुई थी। यह ख़बर सुनते ही दौड़ी, और कैलास की उँगली से टपकते हुए खून को रूमाल से पोंछने लगी। जड़ी पीसी जाने लगी, पर उसी एक मिनट में कैलास की आँखें झपकने लगीं; ओठों पर पीलापन दौड़ने लगा। यहाँ तक कि वह खड़ा न रह सका। फर्श पर बैठ गया। सारे मेहमान कमरे में जमा हो गये। कोई कुछ कहता था, कोई कुछ। इतने में जड़ी पिसकर आ गई। मृणालिनी ने उँगली पर लेप किया। एक मिनट और बीता। कैलास की आँखें बन्द हो गईं। वह लेट गया और हाथ से पंखा झलने का इशारा किया।

माँ ने दौड़कर उसका सिर गोद में रख लिया और बिजली का टेबुल फैन लगा दिया गया।

डाक्टर साहब ने झुककर पूछा—कैलास कैसी तबीयत है? कैलास ने धीरे से हाथ उठा दिया, पर कुछ बोल न सका! मृणालिनी ने करुण-स्वर में कहा—क्या जड़ी कुछ असर न करेगी? डाक्टर साहब ने सिर पकड़कर कहा—क्या बतलाऊँ, मैं इसकी बातों में आ गया। अब तो नश्तर से भी कुछ फायदा न होगा।

आध घण्टे तक यही हाल रहा। कैलास की दशा प्रति-क्षण बिगड़ती जाती थी। यहाँ तक कि उसकी आँखें पथरा गईं, हाथ पाँव ठंडे हो गये, मुखकी कान्ति मलिन पड़ गई, नाड़ी का कहीं पता नहीं। मौत के सारे लक्षण दिखाई देने लगे। घर में कुहराम मच गया। मृणालिनी एक ओर सिर पीटने लगी, माँ अलग पछाड़ें खाने लगी। डाक्टर चड्ढा को मित्रों ने पकड़ लिया, नहीं तो वह नश्तर अपनी गरदन पर मार लेते।

एक महाशय बोले—कोई मंत्र झाड़नेवाला मिले, तो सम्भव है अब भी जान बच जाय।

एक मुसलमान सज्जन ने इसका समर्थन किया—अरे साहब, कब्र में पड़ी हुई लाशें जिन्दा हो गई हैं। ऐसे-ऐसे बाकमाल पड़े हुए हैं।

डाक्टर चड्ढा बोले—मेरी अक्ल पर पत्थर पड़ गया था कि इसकी बातों में आ गया। नश्तर लगा देता. तो यह नौबत ही क्यों आती। बार-बार समझाता रहा कि बेटा साँप न पालो ; मगर कौन सुनता था ! बुलाइये, किसी झाड़-फूँक करनेवाले ही को बुलाइये। मेरा सब कुछ ले-ले, मैं अपनी सारी जायदाद उसके पैरों पर रख दूँगा । लंगोटी बाँधकर घर से निकल जाऊँगा ; मगर मेरा कैलास, मेरा प्यारा कैलास उठ बैठे। ईश्वर के लिये किसी को बुलाइये।

एक महाशय का किसी झाड़नेवाले से परिचय था। वह दौड़कर उसे बुला लाये ; मगर कैलास की सूरत देखकर उसे मंत्र चलाने की हिम्मत न पड़ी। बोला—अब क्या हो सकता है सरकार, जो कुछ होना था, हो चुका !

अरे मूर्ख, यह क्यों नहीं कहता कि जो कुछ न होना था हो चुका। जो कुछ होना था वह कहाँ हुआ ? माँ-बाप ने बेटे का सेहरा कहाँ देखा ! मृणालिनी का कामना-तरु क्या पल्लव और पुष्प से रंजित हो उठा ? मन के वह स्वर्ण-स्वप्न, जिनसे जीवन आनन्द का स्रोत बना हुआ था, क्या वह पूरे हो गये ? जीवन के नृत्यमय, तारिका-मण्डित सागर में आमोद की बहार लूटते हुए क्या उनकी नौका जलमग्न नहीं हो गई ? जो न होना था वह हो गया !

वही हरा-भरा मैदान था, वही सुनहरी चाँदनी एक निःशब्द संगीत की भाँति प्रकृति पर छाई हुई थी, वही मित्र-समाज था। वही मनोरंजन के सामान थे। मगर जहाँ हास्य की ध्वनि थी, वहाँ अब करुण-क्रन्दन और अश्रु-प्रवाह था।

३

शहर से कई मील दूर एक छोटे से घर में एक बूढ़ा और बुढ़िया अँगीठी के सामने बैठे जाड़े की रात काट रहे थे। बूढ़ा नारियल पीता था, और बीच-बीच में खाँसता था। बुढ़िया दोनों घुटनियों में सिर डाले आग की ओर ताक रही थी। एक मिट्टी के तेल की कुप्पी ताक पर जल रही थी! घर में न चारपाई थी, न बिछौना। एक किनारे थोड़ी-सी पुआल पड़ी हुई थी। इसी कोठरी में एक चूल्हा था। बुढ़िया दिन-भर उपले और सूखी लकड़ियाँ बटोरती थी। बूढ़ा रस्सी बटकर बाजार में बेच लाता था। यही उनकी जीविका थी। उन्हें न किसी ने रोते देखा, न हँसते। उनका सारा समय जीवित रहने में कट जाता था। मौत द्वार पर खड़ी थी, रोने या हँसने की कहाँ फुर्सत! बुढ़िया ने पूछा—कल के लिये सन तो है ही नहीं, काम क्या करोगे?

'जाकर झगड़ू साह से दस सेर सन उधार लाऊँगा।'

'उसके पहले के पैसे तो दिये ही नहीं, और उधार कैसे देगा?'

'न देगा न सही। घास तो कहीं नहीं गई है। दोपहर तक क्या दो आने की भी न काटूँगा?'

इतने में एक आदमी ने द्वार पर आवाज़ दी—भगत, भगत, क्या सो गये? ज़रा किवाड़ खोलो।

भगत ने उठकर किवाड़ खोल दिये। एक आदमी ने अन्दर आकर कहा—कुछ सुना, डाक्टर चड्ढा बाबू के लड़के को साँप ने काट लिया।

भगत ने चौंककर कहा—चड्ढा बाबू के लड़के को! वही चड्ढा बाबू हैं न, जो छावनी में बंगले में रहते हैं?

'हाँ हाँ वही। शहर में हल्ला मचा हुआ है। जाते हो तो जाओ, आदमी बन जाओगे?'

बूढ़े ने कठोर भाव से सिर हिलाकर कहा—मैं नहीं जाता। मेरी बला जाय। वही चड्ढा हैं। खूब जानता हूँ। भैया को लेकर उन्हीं के पास गया था। खेलने जा रहे थे। पैरों पर गिर पड़ा कि एक नज़र देख लीजिए; मगर सीधे मुँह बात तक न की। भगवान् बैठे सुन रहे थे। अब जान पड़ेगा कि बेटे का ग़म कैसा होता है। कई लड़के हैं?

'नहीं जी, यही तो एक लड़का था। सुना है सबने जवाब दे दिया है।'

'भगवान् बड़ा कारसाज है। उस बखत मेरी आँखों से आँसू निकल पड़े थे; पर इन्हें तनिक भी दया न आई थी। मैं तो उनके द्वार पर होता, तो भी बात न पूछता।'

'तो न जाओगे? हमने तो सुना था सो कह दिया।'

'अच्छा किया अच्छा किया, कलेजा ठण्डा हो गया, आँखें ठंडी हो गईं। लड़का भी ठण्डा हो गया होगा! तुम जाओ। आज चैन की नींद सोऊँगा। (बुढ़िया से) जरा तमाखू ले ले। एक चिलम और पीऊँगा। अब मालूम होगा लाला को! सारी साहिबी निकल जायगी, हमारा क्या बिगड़ा। लड़के के मर जाने से कुछ राज तो नहीं चला गया। जहाँ ६ बच्चे गए थे वहाँ एक और चला गया। तुम्हारा तो राज सूना हो जायगा। उसी के वास्ते सबका गला दबा-दबाकर जोड़ा था न! अब क्या करोगे। एक बार देखने जाऊँगा; पर कुछ दिन बाद। मिजाज का हाल पूछूँगा।'

आदमी चला गया। भगत ने किवाड़ बन्द कर लिये, तब चिलम पर तमाखू रखकर पीने लगा।

बुढ़िया ने कहा—इतनी रात गए जाड़े-पाले में कौन जायगा।

'अरे दोपहर ही होता, तो मैं न जाता। सवारी दरवाजे पर लेने आती, तो भी न जाता। भूल नहीं गया हूँ। पन्ना की सूरत आज भी आँखों में फिर रही है। इस निर्दयी ने उसे एक नजर देखा तक नहीं! क्या मैं न जानता था कि वह न बचेगा? खूब जानता था। चड्ढा भगवान् नहीं थे कि उसके एक निगाह देख लेने से अमृत बरस जाता। नहीं, खाली मन की दौड़ थी। जरा तसल्ली हो जाती; बस, इसीलिये उनके पास दौड़ा गया था। अब किसी दिन जाऊँगा और कहूँगा, क्यों साहब, कहिए क्या रंग है? दुनिया बुरा कहेगी, कहे; कोई परवाह नहीं। छोटे आदमियों में तो सब ऐब होते ही हैं। बड़ों में कोई ऐब नहीं होता। देवता होते हैं।'

भगत के लिये जीवन में यह पहला अवसर था कि ऐसा समाचार पाकर वह बैठा रह गया हो। ८० वर्ष के जीवन में ऐसा कभी न हुआ कि साँप की खबर पाकर वह दौड़ा न गया हो। माघ-पूस की अँधेरी रात, चैत-बैसाख की धूप और लू, सावन-भादों के चढ़े हुए नदी और नाले, किसी की उसने कभी परवाह न की। वह तुरन्त घर से निकल पड़ता था, निस्स्वार्थ, निष्काम। लेने-देने का विचार कभी दिल में आया ही नहीं। यह ऐसा काम ही न था।

जान का मूल्य कौन दे सकता है ? यह एक पुण्य-कार्य था। सैकड़ों निराशों को उसके मन्त्रों ने जीवन-दान दे दिया था ; पर आज वह घर से कदम नहीं निकाल सका। यह खबर सुनकर भी सोने जा रहा है।

बुढ़िया ने कहा—तमाखू अँगीठी के पास रक्खी हुई है। उसके भी आज ढाई पैसे हो गये। देती ही न थी।

बुढ़िया यह कहकर लेटी। बूढ़े ने कुप्पी बुझाई, कुछ देर खड़ा रहा, फिर बैठ गया। अन्त को लेट गया ; पर यह खबर उसके हृदय पर बोझ की भाँति रक्खी हुई थी। उसे मालूम हो रहा था, उसकी कोई चीज खो गई है, जैसे सारे कपड़े गीले हो गये हैं, या पैरों में कीचड़ लगा हुआ है, जैसे कोई उसके मन में बैठा हुआ उसे घर से निकलने के लिये कुरेद रहा है। बुढ़िया जरा देर में खर्राटे लेने लगी। बूढ़े बातें करते-करते सोते हैं और ज़रा-सा खटका होते ही जागते हैं। तब भगत उठा, अपनी लकड़ी उठा ली, और धीरे से किवाड़ खोले।

बुढ़िया ने पूछा—कहाँ जाते हो ?

'कहीं नहीं, देखता था कितनी रात है।'

'अभी बहुत रात है, सो जाओ।'

'नींद नहीं आती'

'नींद काहे को आयेगी ? मन तो चड्ढा के घर पर लगा हुआ है।'

'चड्ढा ने मेरे साथ कौन-सी नेकी कर दी है जो वहाँ जाऊँ। वह आकर पैरों पड़े, तो भी न जाऊँ।'

'उठे तो तुम इसी इरादे से हो।'

'नहीं री, ऐसा पागल नहीं हूँ कि जो मुझे काँटे बोवे, उसके लिये फूल बोता फिरूँ।'

बुढ़िया फिर सो गई। भगत ने किवाड़ लगा दिए और फिर आकर बैठा ; पर उसके मन की कुछ वही दशा थी जो बाजे की आवाज कान में पड़ते ही, उपदेश सुननेवालों की होती है। आँख चाहे उपदेशक की ओर हों ; पर कान बाजे ही की ओर होते हैं। दिल में भी बाजे की ध्वनि गूँजती रहती है। शर्म के मारे जगह से नहीं उठता। निर्दयी प्रतिघात का भाव भगत के लिये उपदेशक था ; पर हृदय उस अभागे युवक की ओर था जो इस समय मर रहा था, जिसके लिये एक-एक पल का विलम्ब घातक था।

उसने फिर किवाड़ खोले, इतने धीरे से कि बुढ़िया को भी खबर न हुई। बाहर निकल आया। उसी वक्त गाँव का चौकीदार गश्त लगा रहा था। बोला—कैसे उठे भगत, आज तो बड़ी सरदी है ! कहीं जा रहे हो क्या ?

भगत ने कहा—नहीं जी, जाऊँगा कहाँ! देखता था अभी कितनी रात है, भला कै बजे होंगे?

चौकीदार बोला—एक बजा होगा और क्या, अभी थाने से आ रहा था; तो डाक्टर चड्ढा बाबू के बँगले पर बड़ी भीड़ लगी हुई थी। उनके लड़के का हाल तो तुमने सुना होगा, कीड़े ने छू लिया है। चाहे मर भी गया हो। तुम चले जाओ, तो साइत बच जाय। सुना दस हजार तक देने को तैयार हैं।

भगत—मैं तो न जाऊँ, चाहे वह दस लाख भी दें। मुझे दस हजार या दस लाख लेकर करना क्या है? कल मर जाऊँगा, फिर कौन भोगनेवाला बैठा हुआ है!

चौकीदार चला गया। भगत ने आगे पैर बढ़ाया। जैसे नशे में आदमी की देह अपने काबू में नहीं रहती, पैर कहीं रखता है, पड़ता कहीं है, कहता कुछ है, जबान से निकलता कुछ है, वही हाल इस समय भगत का था। मन में प्रतिकार था, दम्भ था, हिंसा थी; पर कर्म मन के अधीन न था। जिसने कभी तलवार नहीं चलाई, वह इरादा करने पर भी तलवार नहीं चला सकता। उसके हाथ काँपते हैं, उठते ही नहीं!

भगत लाठी खट-खट करता लपका चला जाता था।

चेतना रोकती थी, उपचेतना ठेलती थी। सेवक स्वामी पर हावी था।

आधी रात निकल जाने के बाद सहसा भगत रुक गया। हिंसा ने क्रिया पर विजय पाई—मैं यों ही इतनी दूर चला आया। इस जाड़े-पाले में मरने की मुझे क्या पड़ी थी? आराम से सोया क्यों नहीं? नींद न आती न सही, दो-चार भजन ही गाता। व्यर्थ इतनी दूर दौड़ा आया। चड्ढा का लड़का रहे, या मरे, मेरी बला से, मेरे साथ उन्होंने ऐसा कौन-सा सलूक किया था कि मैं उनके लिये मरूँ। दुनिया में हजारों मरते हैं, हजारों जीते हैं। मुझे किसी के मरने-जीने से मतलब!

मगर उपचेतना ने अब एक दूसरा रूप धारण किया, जो हिंसा से बहुत-कुछ मिलता-जुलता था—वह झाड़-फूँक करने नहीं जा रहा है, वह देखेगा कि लोग क्या कर रहे हैं, ज़रा डाक्टर साहब का रोना-पीटना देखेगा, किस तरह सिर पीटते हैं, किस तरह पछाड़ें खाते हैं। वह देखेगा कि बड़े लोग भी छोटों की भाँति रोते हैं या सबर कर जाते हैं। वह लोग तो विद्वान् होते हैं, सबर कर जाते होंगे। हिंसा भाव को यों धीरज देता हुआ वह फिर आगे बढ़ा।

इतने में दो आदमी आते दिखाई दिये। दोनों बातें करते

चले आ रहे थे—चड्ढा बाबू का घर उजड़ गया, यही तो एक लड़का था। भगत के कान में यह आवाज़ पड़ी। उसकी चाल और भी तेज़ हो गई। थकन के मारे पाँव न उठते थे। शिरोभाग इतना बढ़ा जाता था मानो अब मुँह के बल गिर पड़ेगा। इस तरह वह कोई १० मिनट चला होगा कि डाक्टर साहब का बँगला नज़र आया। बिजली की बत्तियाँ जल रही थीं; मगर सन्नाटा छाया हुआ था। रोने-पीटने की आवाज़ भी न आती थी। भगत का कलेजा धक-धक करने लगा। कहीं मुझे बहुत देर तो नहीं हो गई। वह दौड़ने लगा। अपनी उम्र में वह इतना तेज कभी न दौड़ा था। बस, यही मालूम होता था मानो उसके पीछे मौत दौड़ी आ रही है।

४

दो बज गये थे। मेहमान बिदा हो गये थे। रोनेवालों में केवल आकाश के तारे रह गये थे। और सभी रो-रोकर थक गये थे। बड़ी उत्सुकता के साथ लोग रह-रहकर आकाश की ओर देखते थे कि किसी तरह सुबह हो और लाश गंगा की गोद में दी जाय।

सहसा भगत ने द्वार पर पहुँचकर आवाज़ दी। डाक्टर साहब समझे- कोई मरीज़ आया होगा। किसी

और दिन उन्होंने उस आदमी को दुत्कार दिया होता ; मगर आज बाहर निकल आये। देखा, एक बूढ़ा आदमी खड़ा है, कमर झुकी हुई, पोपला मुँह, भौंहें तक सफेद हो गई थीं। लकड़ी के सहारे काँप रहा था। बड़ी नम्रता से बोले— क्या है भई, आज तो हमारे ऊपर ऐसी मुसीबत पड़ गई है कि कुछ कहते नहीं बनता, फिर कभी आना। इधर एक महीना तक तो शायद मैं किसी मरीज़ को न देख सकूँगा।

भगत ने कहा—सुन चुका हूँ बाबूजी, इसीलिये आया हूँ। भैया कहाँ हैं, ज़रा मुझे भी दिखा दीजिये। भगवान् बड़ा कारसाज़ है, मुरदे को भी जिला सकता है। कौन जाने, अब भी उसे दया आ जाय !

चड्ढा ने व्यथित स्वर से कहा—चलो देख लो ; मगर तीन-चार घण्टे हो गये। जो कुछ होना था हो चुका। बहु-तेरे झाड़ने-फूँकनेवाले देख-देखकर चले गये।

डाक्टर साहब को आशा तो क्या होती, हाँ बूढ़े पर दया आ गई ; अन्दर ले गये। भगत ने लाश को एक मिनट तक देखा। तब मुसकराकर बोला—अभी कुछ नहीं बिगड़ा है बाबूजी। वाह ! नारायन चाहेंगे, तो आध घण्टे में भैया उठ बैठेंगे। आप नाहक दिल छोटा कर रहे हैं। ज़रा कहारों से कहिये, पानी तो भरें।

कहारों ने पानी भर-भरकर कैलास को नहलाना शुरू किया। पाइप बन्द हो गया था। कहारों की संख्या अधिक न थी। इसलिये मेहमानों ने अहाते के बाहर के कूएँ से पानी भर-भर कहारों को दिया। मृणालिनी कलसा लिये पानी ला रही थी। बूढ़ा भगत खड़ा मुसकिरा-मुसकिरा कर मंत्र पढ़ रहा था, मानो विजय उसके सामने खड़ी है। जब एक बार मंत्र समाप्त हो जाता, तब वह एक जड़ी कैलास को सुँघा देता। इस तरह न-जाने कितने घड़े कैलास के सिर पर डाले गये और न-जाने कितनी बार भगत ने मंत्र फूँका। आखिर जब उषा ने अपनी लाल-लाल आँखें खोलीं, तो कैलास की लाल-लाल आँखें भी खुल गईं! एक क्षण में उसने अँगड़ाई ली और पानी पीने को माँगा। डाक्टर चड्ढा ने दौड़कर नारायणी को गले लगा लिया, नारायणी दौड़कर भगत के पैरों पर गिर पड़ी और मृणालिनी कैलास के सामने आँखों में आँसू भरे पूछने लगी—अब कैसी तबीयत है?

एक क्षण में चारों तरफ खबर फैल गई। मित्रगण मुबारकबाद देने आने लगे। डाक्टर साहब बड़े श्रद्धा-भाव से हर एक के सामने भगत का यश गाते फिरते थे। सभी लोग भगत के दर्शनों के लिये उत्सुक हो उठे; मगर अन्दर जाकर देखा, तो भगत का कहीं पता न था। नौकरों ने

कहा—अभी तो यहीं बैठे चिलम पी रहे थे। हम लोग तमाखू देने लगे, तो नहीं ली, अपने पास से तमाखू निकालकर भरी। यहाँ तो भगत की चारों ओर तलाश होने लगी, और भगत लपका हुआ घर चला जा रहा था कि बुढ़िया के उठने से पहले घर पहुँच जाऊँ!

जब मेहमान लोग चले गये, तो डाक्टर साहब ने नारायणी से कहा—बुड्ढा न-जाने कहाँ चला गया। एक चिलम तमाखू का भी रवादार न हुआ?

नारायणी—मैंने तो सोचा था, इसे कोई बड़ी रकम दूँगी।

चड्ढा—रात को तो मैंने नहीं पहचाना; पर ज़रा साफ हो जाने पर पहचान गया। एक बार यह एक मरीज़ को लेकर आया था। मुझे अब याद आता है कि मैं खेलने जा रहा था और मरीज़ को देखने से इनकार कर दिया था। आज उस दिन की बात याद करके मुझे जितनी ग्लानि हो रही है, उसे प्रकट नहीं कर सकता। मैं उसे अब खोज निकालूँगा और उसके पैरों पर गिरकर अपना अपराध क्षमा कराऊँगा। वह कुछ लेगा नहीं, यह जानता हूँ। उसका जन्म यश की वर्षा करने ही के लिये हुआ है। उसकी सज्जनता ने मुझे ऐसा आदर्श दिखा दिया है, जो अबसे जीवन-पर्यन्त मेरे सामने रहेगा।

फ़ातिहा

१
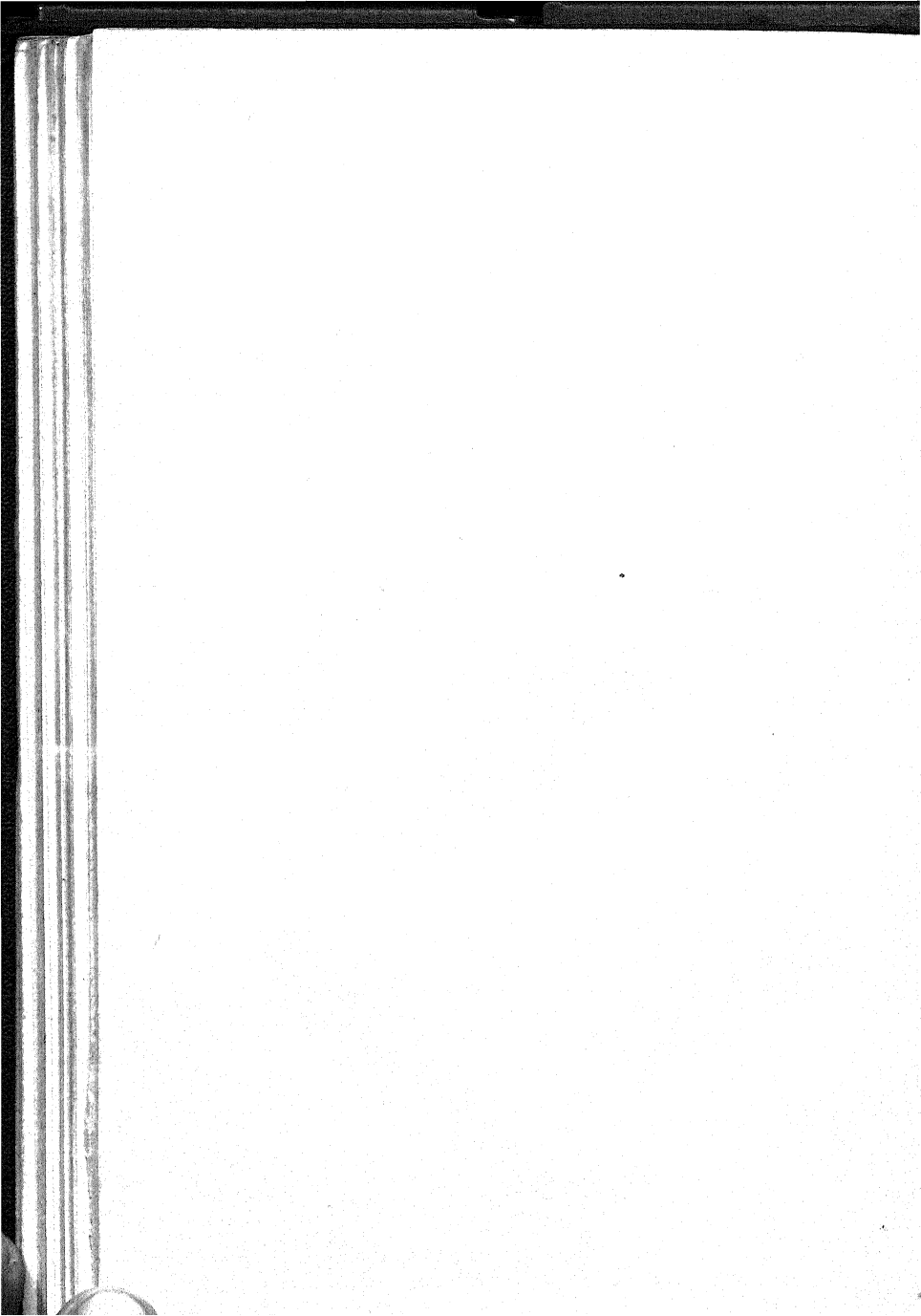
सरकारी अनाथालय से निकालकर मैं सीधा फ़ौज में भरती किया गया। मेरा शरीर हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ था। साधारण मनुष्यों की अपेक्षा मेरे हाथ-पैर कहीं लम्बे और स्नायु-युक्त थे। मेरी लम्बाई पूरी छः फीट नौ इंच थी। पलटन में मैं 'देव' के नाम से विख्यात था। जब से मैं फ़ौज में भरती हुआ, तब से मेरी किस्मत ने भी पलटा खाना शुरू किया। और मेरे हाथ से कई ऐसे काम हुए, जिनसे प्रतिष्ठा के साथ-साथ मेरी आय भी बढ़ती गई। पलटन का हर-एक जवान मुझे जानता था। मेजर सरदार हिम्मतसिंह की कृपा मेरे ऊपर बहुत थी; क्योंकि मैंने एक बार उनकी प्राण-रक्षा की थी। इसके अतिरिक्त न-जाने क्यों उनको देखकर

मेरे हृदय में भक्ति और श्रद्धा का सञ्चार होता। मैं यही समझता कि यह मेरे पूज्य हैं, और सरदार साहब का भी व्यवहार मेरे साथ स्नेह-युक्त और मित्रता-पूर्ण था।

मुझे अपने माता-पिता का पता नहीं है, और न उनकी कोई स्मृति ही है। कभी-कभी जब मैं इस प्रश्न पर विचार करने बैठता हूँ, तो कुछ धुँधले-से दृश्य दिखाई देते हैं— बड़े-बड़े पहाड़ों के बीच में रहता हुआ एक परिवार, और एक स्त्री का मुख, जो शायद मेरी माँ का होगा। पहाड़ों के बीच में तो मेरा पालन-पोषण ही हुआ है। पेशावर से ८० मील पूर्व एक ग्राम है, जिसका नाम 'कुलाहा' है, वहीं पर एक सरकारी अनाथालय है। इसी में मैं पाला गया। यहाँ से निकलकर सीधा फ़ौज में चला गया। हिमालय के जल-वायु से मेरा शरीर बना है, और मैं वैसा ही दीर्घाकृति और बर्बर हूँ, जैसे कि सीमाप्रान्त के रहनेवाले अफ़्रीदी, ग़िलज़ई, महसूदी आदि पहाड़ी क़बीलों के लोग होते हैं। यदि उनके और मेरे जीवन में कुछ अन्तर है, तो वह सभ्यता का। मैं थोड़ा-बहुत पढ़-लिख लेता हूँ, बात-चीत कर लेता हूँ, अदब-क़ायदा जानता हूँ। छोटे-बड़े का लिहाज़ कर सकता हूँ; किन्तु मेरी आकृति वैसी ही है, जैसी कि किसी भी सरहदी पुरुष की हो सकती है।

कभी-कभी मेरे मन में यह इच्छा बलवती होती कि स्वच्छन्द होकर पहाड़ों की सैर करूँ, लेकिन जीविका का प्रश्न मेरी इच्छा को दबा देता। उस सूखे देश में खाने का कुछ भी ठिकाना नहीं था। वहाँ के लोग एक रोटी के लिये मनुष्य की हत्या कर डालते, एक कपड़े के लिये मुरदे की लाश चीर-फाड़कर फेंक देते, और एक बन्दूक के लिये सरकारी फ़ौज पर छापा मारते हैं। इसके अतिरिक्त उन जंगली जातियों का एक-एक मनुष्य मुझे जानता था और मेरे ख़ून का प्यासा था। यदि मैं उन्हें मिल जाता, तो ज़रूर मेरा नाम-निशान दुनिया से मिट जाता। न-जाने कितने अफ़्रीदियों और ग़िलज़इयों को मैंने मारा था, कितनों को पकड़-पकड़कर सरकारी जेलखाने में भर दिया था, और न-मालूम उनके कितने गाँवों को जलाकर ख़ाक कर दिया था। मैं भी बहुत सतर्क रहता, और जहाँ तक होता, एक स्थान पर एक हफ़्ते से अधिक कभी न रहता।

२

एक दिन मैं मेजर सरदार हिम्मतसिंह के घर की ओर जा रहा था। उस समय दिन के दो बजे थे। आजकल छुट्टी-सी थी; क्योंकि अभी हाल ही में कई गाँव भस्मीभूत

कर दिये गये थे और जल्दी उनकी तरफ से कोई आशंका नहीं थी। हम लोग निश्चिन्त होकर गप्प और हँसी-खेल में दिन गुज़ारते। बैठे-बैठे दिल घबरा गया था, सिर्फ मन बहलाने के लिये सरदार साहब के घर की ओर चला; किन्तु रास्ते में एक दुर्घटना हो गई। एक बूढ़ा अफ़्रीदी, जो अब भी एक हिन्दुस्थानी जवान का सिर मरोड़ देने के लिये काफ़ी था, एक फ़ौजी जवान से भिड़ा हुआ था। मेरे देखते-देखते उसने अपनी कमर से एक तेज़ छुरा निकाला और उसकी छाती में घुसेड़ दिया। उस जवान के पास एक कारतूसी बन्दूक थी, बस उसी के लिये यह सब लड़ाई थी। पलक मारते-मारते फ़ौजी जवान का काम-तमाम हो गया और बूढ़ा बन्दूक लेकर भागा। मैं उसके पीछे दौड़ा; लेकिन दौड़ने में वह इतना तेज़ था कि बात-की-बात में आँखों से ओझल हो गया। मैं भी बेतहाशा उसका पीछा कर रहा था। आख़िर सरहद पर पहुँचते-पहुँचते मैं उससे बीस हाथ की दूरी पर रह गया। उसने पीछे फिरकर देखा, मैं अकेला उसका पीछा कर रहा था। उसने बन्दूक का निशाना मेरी ओर साधा। मैं फ़ौरन् ही ज़मीन पर लेट गया और बन्दूक की गोली मेरे सामने के पत्थर पर लगी। उसने समझा कि मैं गोली का शिकार हो गया। वह धीरे-धीरे सतर्क पदों से

मेरी ओर बढ़ा। मैं साँस खींचकर लेट गया। जब वह बिल्कुल मेरे पास आ गया, शेर की तरह उछलकर मैंने उसकी गरदन पकड़कर ज़मीन पर पटक दिया और छुरा निकालकर उसकी छाती में घुसेड़ दिया। अफ़्रीदी की जीवन-लीला समाप्त हो गई। इसी समय मेरी पलटन के कई लोग भी आ पहुँचे। चारों तरफ़ से लोग मेरी प्रशंसा करने लगे। अभी तक मैं अपने-आपे में न था; लेकिन अब मेरी सुध-बुध वापस आई। न-मालूम क्यों उस बुड्ढे को देखकर मेरा जी घबराने लगा। अभी तक न-मालूम कितने ही अफ़्रीदियों को मारा था; लेकिन कभी भी मेरा हृदय इतना घबराया न था। मैं ज़मीन पर बैठ गया, और उस बुड्ढे की ओर देखने लगा। पलटन के जवान भी पहुँच गये और मुझे घायल जानकर अनेक प्रकार के प्रश्न करने लगे। धीरे-धीरे मैं उठा और चुपचाप शहर की ओर चला। सिपाही मेरे पीछे-पीछे उसी बुड्ढे की लाश घसीटते हुए चले। शहर के निवासियों ने मेरी जय-जयकार का ताँता बाँध दिया। मैं चुपचाप मेजर सरदार हिम्मतसिंह के घर में घुस गया।

सरदार साहब उस समय अपने ख़ास कमरे में बैठे हुए कुछ लिख रहे थे। उन्होंने मुझे देखकर पूछा—क्यों, उस अफ़्रीदी को मार आए?

मैंने बैठते हुए कहा—जी हाँ, लेकिन सरदार साहब, न जाने क्यों मैं कुछ थोड़ा बुज़दिल हो गया हूँ।

सरदार साहब ने आश्चर्य से कहा—असदखाँ और बुज़दिल! यह दोनों एक जगह होना नामुमकिन है।

मैंने उठते हुए कहा—सरदार साहब, यहाँ तबीयत नहीं लगती, उठकर बाहर बरामदे में बैठिये। न मालूम क्यों मेरा दिल घबराता है।

सरदार साहब उठकर मेरे पास आए और स्नेह से मेरी पीठपर हाथ फेरते हुए कहा—असद, तुम दौड़ते-दौड़ते थक गये हो, और कोई बात नहीं है। अच्छा चलो, बरामदे में बैठें। शाम की ठंडी हवा तुम्हें ताज़ा कर देगी।

सरदार साहब और मैं, दोनों बरामदे में जाकर कुरसियों पर बैठ गये। शहर के चौमुहाने पर उसी वृद्ध की लाश रक्खी थी, और उसके चारों ओर भीड़ लगी हुई थी। बरामदे में जब मुझे बैठे हुए देखा, तो लोग मेरी ओर इशारा करने लगे। सरदार साहब ने यह दृश्य देखकर कहा—असद खाँ, देखो, लोगों की निगाह में तुम कितने ऊँचे हो। तुम्हारी वीरता को यहाँ का बच्चा-बच्चा सराहता है। अब भी तुम कहते हो कि मैं बुज़दिल हूँ।

मैंने मुस्कराकर कहा—जब से इस बुड्ढे को मारा है, तब से मेरा दिल मुझे धिक्कार रहा है।

सरदार साहब ने हँसकर कहा—क्योंकि तुमने अपने से निर्बल को मारा है।

मैंने अपनी दिलजमई करते हुए कहा—मुमकिन है ऐसा ही हो।

इसी समय एक अफ़्रीदी रमणी धीरे-धीरे आकर सरदार साहब के मकान के सामने खड़ी हो गई। ज्यों ही सरदार साहब ने देखा, उनका मुँह सफ़ेद पड़ गया। उनकी भयभीत दृष्टि उसकी ओर से फिरकर मेरी ओर हो गई। मैं भी आश्चर्य से उनके मुँह की ओर निहारने लगा। उस रमणी का-सा सुगठित शरीर मरदों का भी कम होता है। ख़ाकी रंग के मोटे कपड़े का पायजामा और नीले रंग का मोटा कुरता पहने हुए थी। बलूची औरतों की तरह सिर पर रूमाल बाँध रक्खा था। रंग चम्पई था और यौवन की आभा फूट-फूटकर बाहर निकली पड़ती थी। इस समय उसकी आँखों में ऐसी भीषणता थी, जो किसी के दिल में भय का सञ्चार करती। रमणी की आँखें सरदार साहब की ओर से फिरकर मेरी ओर आई और उसने यों घूरना शुरू किया कि मैं भी भयभीत हो गया। रमणी ने सरदार साहब की

ओर देखा और फिर ज़मीन पर थूक दिया, और फिर मेरी ओर देखती हुई धीरे-धीरे दूसरी ओर चली गई।

रमणी को जाते देखकर सरदार साहब की जान में जान आई। मेरे सिर पर से भी एक बोझ हट गया।

मैंने सरदार साहब से पूछा—क्यों, क्या आप इसे जानते हैं?

सरदार साहब ने एक गहरी ठंडी साँस लेकर कहा—हाँ, बखूबी। एक समय था, जब यह मुझपर जान देती थी और वास्तव में अपनी जान पर खेलकर मेरी रक्षा भी की थी; लेकिन अब इसको मेरी सूरत से नफ़रत है। इसी ने मेरी स्त्री की हत्या की है। इसे जब कभी देखता हूँ, मेरे होश-हवास काफ़ूर हो जाते हैं, और वही भयानक दृश्य मेरी आँखों के सामने नाचने लगता है।

मैंने भय-विह्वल स्वर में पूछा—सरदार साहब, उसने मेरी ओर भी तो बड़ी भयानक दृष्टि से देखा था। न-मालूम क्यों मेरे भी रोएँ खड़े हो गये थे।

सरदार साहब ने सिर हिलाते हुए बड़ी गम्भीरता से कहा—असदखाँ, तुम भी होशियार रहो। शायद इस बूढ़े अफ़ीदी से इसका भी सम्पर्क है। मुमकिन हो यह उसका भाई या बाप हो। तुम्हारी ओर उसका देखना कोई मानी रखता है। बड़ी ही भयानक स्त्री है।

सरदार साहब की बात सुनकर मेरी नस-नस काँप उठी। मैंने बातों का सिलसिला दूसरी ओर फेरते हुए कहा—सरदार साहब, आप इसको पुलिस के हवाले क्यों नहीं कर देते। इसको फाँसी हो जायगी।

सरदार साहब ने कहा—भाई असद ख़ाँ, इसने मेरे प्राण बचाए थे और शायद अब भी मुझे चाहती है। इसकी कथा बहुत लम्बी है। कभी अवकाश मिला तो कहूँगा।

सरदार की बातों से मुझे भी कुतूहल हो रहा था। मैंने उनसे वह वृत्तान्त सुनाने के लिये आग्रह करना शुरू किया। पहले तो उन्होंने टालना चाहा; पर जब मैंने बहुत ज़ोर दिया तो विवश होकर बोले—असद, मैं तुम्हें अपना भाई समझता हूँ, इसलिये तुमसे कोई परदा न रक्खूँगा। लो सुनो—

असदख़ाँ, पाँच साल पहले मैं इतना वृद्ध न था, जैसा कि अब दिखाई पड़ता हूँ। इस समय मेरी आयु ४० वर्ष से अधिक नहीं है। एक भी बाल सफ़ेद न हुआ था और उस समय मुझमें इतना बल था कि दो जवानों को मैं लड़ा देता। जर्मनों से मैंने मुठभेड़ ली है और न-मालूम कितनों को यमलोक का रास्ता बता दिया। जर्मन-युद्ध के बाद मुझे यहाँ सीमाप्रान्त पर काली पलटन का मेजर बनाकर भेजा गया। जब पहले-पहल मैं यहाँ आया, तो यहाँ पर कठिना-

इयाँ सामने आई ; लेकिन मैंने उनकी ज़रा भी परवाह न की और धीरे-धीरे उन सब पर विजय पाई। सबसे पहले यहाँ आकर मैंने पश्तो सीखना शुरू किया। पश्तो के बाद और भी ज़बानें सीखीं, यहाँ तक कि मैं उनको बड़ी आसानी और मुहाविरों के साथ बोलने लगा ; फिर इसके बाद कई आदमियों की टोलियाँ बनाकर देश का अन्तर्भाग भी छान डाला। इस पड़ताल में कई बार मैं मरते-मरते बचा ; किन्तु सब कठिनाइयाँ झेलते हुए मैं यहाँ पर सकुशल रहने लगा। उस ज़माने में मेरे हाथ से ऐसे-ऐसे काम हो गये, जिनसे सरकार में मेरी बड़ी नामवरी और प्रतीष्ठा भी हो गई। एक बार कर्नल हैमिलटन की मेम-साहब को मैं अकेले छुड़ा लाया था, और कितने ही देशी आदमियों और औरतों के प्राण मैंने बचाये हैं। यहाँ पर आने के तीन साल बाद से मेरी कहानी आरम्भ होती है।

एक रात को मैं अपने 'कैम्प' में लेटा हुआ था। अफ़्रीदियों से लड़ाई हो रही थी। दिन के थके-माँदे सैनिक ग़ाफ़िल पड़े हुए थे। कैम्प में सन्नाटा था। लेटे-लेटे मुझे भी नींद आ गई। जब मेरी नींद खुली तो देखा, कि छाती पर एक अफ़्रीदी—जिसकी आयु मेरी आयु से लगभग दूनी होगी—सवार है और मेरी छाती में छुरा घुसेड़ने ही वाला

है। मैं पूरी तरह से उसके अधीन था, कोई भी बचने का उपाय न था; किन्तु उस समय मैंने बड़े ही धैर्य से काम लिया और पश्तो भाषा में कहा—मुझे मारो नहीं, मैं सरकारी फ़ौज में अफ़सर हूँ, मुझे पकड़ ले चलो, सरकार तुमको रुपया देकर मुझे छुड़ायेगी।

ईश्वर की कृपा से मेरी बात उसके मन में बैठ गई। कमर से रस्सी निकालकर मेरे हाथ-पैर बाँधे और फिर कंधे पर बोझ की तरह लादकर खेमे से बाहर आया। बाहर मार-काट का बाज़ार गर्म था। उसने एक विचित्र प्रकार से चिल्लाकर कुछ कहा और मुझे कंधे पर लादे वह जंगल की ओर भागा। यह मैं कह सकता हूँ कि उसको मेरा बोझ कुछ भी मालूम न होता था, और बड़ी तेज़ी से भागा जा रहा था। उसके पीछे-पीछे कई आदमी, जो उसी के गिरोह के थे, लूट का माल लिये हुए भागे चले आ रहे थे।

प्रातःकाल हम लोग एक तालाब के पास पहुँचे। तालाब बड़े-बड़े पहाड़ों से घिरा हुआ था। उसका पानी बड़ा निर्मल था, और जंगली पेड़ इधर-उधर उग रहे थे। तालाब के पास पहुँचकर हम सब लोग ठहरे। बुड्ढे ने, जो वास्तव में उस गिरोह का सरदार था, मुझे पत्थर पर डाल दिया। मेरी कमर में बड़ी ज़ोर से चोट लगी, ऐसा मालूम हुआ

कि कोई हड्डी टूट गई है ; लेकिन ईश्वर की कृपा से हड्डी टूटी न थी। सरदार ने मुझे पृथ्वी पर डालने के बाद कहा—क्यों, कितना रुपया दिलायेगा ?

मैंने अपनी वेदना दबाते हुए कहा—पाँच सौ रुपये।

सरदार ने मुँह बिगाड़कर कहा—नहीं, इतना कम नहीं लेगा। दो हज़ार से एक पैसा भी कम मिला, तो तुम्हारी जान की खैर नहीं।

मैंने कुछ सोचते हुए कहा—सरकार इतना रुपया काले आदमी के लिये नहीं खर्च करेगी।

सरदार ने छुरा बाहर निकालते हुए कहा—तब फिर क्यों कहा था कि सरकार इनाम देगी ! ले, तो फिर यहीं मर।

सरदार छुरा लिये मेरी तरफ़ बढ़ा।

मैं घबड़ाकर बोला—अच्छा, सरदार, मैं तुमको दो हज़ार दिलवा दूँगा।

सरदार रुक गया और बड़ी ज़ोर से हँसा। उसकी हँसी की प्रतिध्वनि ने निर्जीव पहाड़ों को भी कँपा दिया। मैंने मन-ही-मन कहा—बड़ा भयानक आदमी है।

गिरोह के दूसरे आदमी अपनी-अपनी लूट का माल सरदार के सामने रखने लगे। उसमें कई बंदूकें, कारतूस,

रोटियाँ और कपड़े थे। मेरी भी तलाशी ली गई। मेरे पास एक छः फ़ायर का तमंचा था। तमंचा पाकर सरदार उछल पड़ा, और उसे फिरा-फिराकर देखने लगा। वहीं पर उसी समय हिस्सा-बाँट शुरू हो गया। बराबर-बराबर का हिस्सा लगा; लेकिन मेरा रिवालवर उसमें नहीं शामिल किया गया। वह सरदार साहब की ख़ास चीज़ थी।

थोड़ी देर विश्राम करने के बाद, फिर यात्रा शुरू हुई। इस बार मेरे पैर खोल दिये गये और साथ-साथ चलने को कहा—मेरी आँखों पर पट्टी भी बाँध दी गई, ताकि मैं रास्ता न देख सकूँ। मेरे हाथ रस्सी से बँधे हुए थे, और उसका एक सिरा एक अफ़्रीदी के हाथ में था।

चलते-चलते मेरे पैर दुखने लगे; लेकिन उनकी मंजिल पूरी न हुई। सिर पर जेठ का सूरज चमक रहा था, पैर जले जा रहे थे, प्यास से गला सूखा जा रहा था; लेकिन वे बराबर चले जा रहे थे। वे आपस में बातें करते जाते थे; लेकिन अब मैं उनकी एक बात भी न समझ पाता। कभी-कभी एकआध शब्द तो समझ जाता; लेकिन बहुत अंशों में मैं कुछ भी न समझ पाता था। वे लोग इस समय अपनी विजय पर प्रसन्न थे, और एक अफ़्रीदी ने अपनी भाषा में एक गीत गाना शुरू किया। गीत बड़ा ही अच्छा था।

असदख़ाँ ने पूछा—सरदार साहब, वह गीत क्या था ?

सरदार साहब ने कहा—उस गीत का भाव याद है। भाव यह है कि एक अफ्रीदी जा रहा है, तो उसकी स्त्री कहती है—कहाँ जाते हो ?

युवक उत्तर देता है—जाते हैं तुम्हारे लिये रोटी और कपड़ा लाने।

स्त्री पूछती है—और कुछ अपने बच्चों के लिये नहीं लाओगे ?

युवक उत्तर देता है—बच्चे के लिये बंदूक लाऊँगा, ताकि जब वह बड़ा हो, तो वह भी लड़े और अपनी प्रेमिका के लिये रोटी और कपड़ा ला सके।

स्त्री कहती है—यह तो कहो, कब आओगे ?

युवक उत्तर देता है—आऊँगा तभी, जब कुछ जीत लाऊँगा, नहीं तो वहीं मर जाऊँगा।

स्त्री कहती है—शाबास, जाओ, तुम वीर हो, तुम ज़रूर सफल होगे।

गीत सुनकर मैं मुग्ध हो गया। गीत समाप्त होते-होते हम लोग भी रुक गए। मेरी आँखें खोली गईं। सामने बड़ा सा मैदान था और चारों ओर गुफ़ाएँ बनी हुई थीं, जो उन्हीं लोगों के रहने की जगह थी।

फिर मेरी तलाशी ली गई, और इस दफ़े सब कपड़े उतरवा लिये गए, केवल पायजामा रह गया। सामने एक बड़ा-सा शिलाखण्ड रक्खा हुआ था। सब लोगों ने मिलकर उसे हटाया और मुझे उसी ओर ले चले। मेरी आत्मा काँप उठी। यह तो ज़िन्दा क़ब्र में डाल देंगे। मैंने बड़ी ही वेदना-पूर्ण दृष्टि से सरदार की ओर देखकर कहा—सरदार, सरकार तुम्हें रुपया देगी। मुझे मारो नहीं।

सरदार ने हँसकर कहा—तुम्हें मारता कौन है, क़ैद किया जाता है। इस घर में बन्द रहोगे, जब रुपया आ जायगा, छोड़ दिये जाओगे।

सरदार की बात सुनकर मेरे प्राण-में-प्राण आये। सरदार ने मेरी पाकेटबुक और पेंसिल सामने रखते हुए कहा—लो, इसमें लिख दो। अगर एक पैसा भी कम आया, तो तुम्हारी जान की ख़ैर नहीं।

मैंने कमिश्नर साहब के नाम एक पत्र लिखकर दे दिया। उन लोगों ने मुझे उसी अन्ध-कूप में लटका दिया और रस्सी खींच ली।

४

सरदार साहब ने एक लम्बी साँस ली और कहना शुरू किया—असदख़ाँ, जिस समय मैं उस कूए में लटकाया

जा रहा था, मेरी अन्तरात्मा काँप रही थी। नीचे घटाटोप अन्धकार की जगह हल्की चाँदनी छाई हुई थी। भीतर से गुफा न बहुत छोटी और न बहुत बड़ी थी। फ़र्श खुदुरा था, ऐसा मालूम होता था कि बरसों यहाँ पर पानी की धार गिरी है और यह गढ़ा तब जाकर तैयार हुआ है। पत्थर की मोटी दीवार से वह कूप घिरा हुआ था और उसमें जहाँ-तहाँ छेद थे, जिनसे प्रकाश और वायु आती थी। नीचे पहुँचकर मैं अपनी दशा का हेर-फेर सोचने लगा। दिल बहुत घबराता था। वह काल-कोठरी की यन्त्रणा भोगना भी भाग्य में विधाता ने लिख दिया था।

धीरे-धीरे सन्ध्या का आगमन हुआ। उन लोगों ने अभी तक मेरी कुछ खोज-खबर न ली थी। भूख से आत्मा व्याकुल हो रही थी। बार-बार विधाता और अपने को कोसता। जब मनुष्य निरुपाय हो जाता है, तो विधाता को कोसता है।

अन्त में एक छेद से चार बड़ी-बड़ी रोटियाँ किसी ने बाहर से फेंकीं। जिस तरह कुत्ता एक रोटी के टुकड़े पर दौड़ता है, वैसे ही मैं भी दौड़ा और उन्हें उठाकर उस छेद की ओर देखने लगा; लेकिन फिर किसी ने कुछ न फेंका, और न कुछ आदेश ही मिला। मैं बैठकर रोटियाँ खाने

लगा। थोड़ी देर बाद उसी छेद पर एक लोहे का प्याला रख दिया गया, जिसमें पानी भरा हुआ था। मैंने परमात्मा को धन्यवाद देकर पानी उठाकर पिया। जब आत्मा कुछ तृप्त हुई, तो कहा—थोड़ा पानी और चाहिए।

इस पर दीवार की उस ओर एक भीषण हँसी की प्रतिध्वनि सुनाई दी, और किसी ने खनखनाते हुए स्वर में कहा—पानी अब कल मिलेगा। प्याला दे दो, नहीं तो कल भी पानी नहीं मिलेगा।

क्या करता, हार कर प्याला वहीं पर रख दिया।

इसी प्रकार कई दिन बीत गए। नित्य दोनों समय चार रोटियाँ और एक प्याला पानी मिल जाता था। धीरे-धीरे मैं भी इस शुष्क जीवन का आदी हो गया। निर्जनता अब उतनी न खलती। कभी-कभी मैं अपनी भाषा में और कभी-कभी पश्तों में गाता। इससे मेरी तबीयत बहुत कुछ बहल जाती और हृदय भी शान्त हो जाता।

एक दिन रात्रि के समय मैं एक पश्तो गीत गा रहा था। मजनू झुलसानेवाले बगूलों से कह रहा था—तुममें क्या वह हरारत नहीं है, जो काफ़लों को जलाकर ख़ाक कर देती है। आख़िर वह गरमी मुझे क्यों नहीं जलाती ? क्या इसलिये कि मेरे अन्दर खुद एक ज्वाला भरी हुई है ?

देखो, जब लैला ढूँढ़ती हुई यहाँ आवे, तो मेरा शरीर बालू से ढक देना, नहीं तो शीशे की तरह लैला का दिल टूट जायगा।

मैंने गाना बन्द कर दिया। उसी समय छेद से किसी ने कहा—क़ैदी, फिर तो गाओ।

मैं चौंक पड़ा। कुछ खुशी भी हुई, कुछ आश्चर्य भी; पूछा—तुम कौन हो?

उसी छेद से उत्तर मिला—मैं हूँ तूरया, सरदार की लड़की।

मैंने पूछा—क्या तुमको यह गाना पसन्द है?

तूरया ने उत्तर दिया—हाँ, क़ैदी गाओ, मैं फिर सुनना चाहती हूँ।

मैं हर्ष से गाने लगा। गीत समाप्त होने पर तूरया ने कहा—तुम रोज़ यही गीत मुझे सुनाया करो। इसके बदले में मैं तुमको और रोटियाँ और पानी दूँगी।

तूरया चली गई। इसके बाद मैं सदा रात के समय वही गीत गाता, और तूरया सदा दीवार के पास आकर सुनती।

मेरे मनोरञ्जन का एक मार्ग और निकल आया।

धीरे-धीरे एक मास बीत गया; पर किसी ने अभी तक

मेरे छुड़ाने के लिये रुपया न भेजा। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते, मैं अपने जीवन से निराश होता जाता।

ठीक ६ महीने बाद सरदार ने आकर कहा—क़ैदी, अगर कल तक रुपया न आवेगा, तो तुम मार डाले जाओगे। मैं अब रोटियाँ नहीं खिला सकता।

मुझे जीवन की कुछ आशा न रही। उस दिन न मुझसे खाया गया और न कुछ पिया ही गया। रात हुई, फिर रोटियाँ फेंक दी गईं; लेकिन खाने की इच्छा नहीं हुई।

निश्चित समय पर तूरया ने आकर कहा—क़ैदी, गाना गाओ।

उस दिन मुझे कुछ अच्छा न लगता था। मैं चुप रहा।

तूरया ने फिर कहा—क़ैदी, क्या सो गया ?

मैंने बड़े ही मलिन स्वर में कहा—नहीं, आज से सोकर क्या करूँ, कल ऐसा सोऊँगा कि फिर जागना न पड़ेगा।

तूरया ने प्रश्न किया—क्यों, क्या सरकार रुपया न भेजेगी ?

मैंने उत्तर दिया—भेजेगी तो, लेकिन कल तो मैं मार डाला जाऊँगा, मेरे मरने के बाद रुपया भी आया, तो मेरे किस काम का !

तूरया ने सान्त्वना-पूर्ण स्वर में कहा—अच्छा तुम गाओ, मैं कल तुम्हें मरने न दूँगी।

मैंने गाना शुरू किया। जाते समय तूरया ने पूछा—क़ैदी, तुम कटहरे में रहना पसन्द करते हो?

मैंने सहर्ष उत्तर दिया—हाँ, किसी तरह इस नरक से तो छुटकारा मिले।

तूरया ने कहा—अच्छा, कल मैं अब्बा से कहूँगी।

दूसरे ही दिन मुझे उस अन्धकूप से बाहर निकाला गया। मेरे दोनों पैर दो मोटी शहतीरों के छेदों में बन्द कर दिए गये और वह काठ की ही कीलों से प्राकृतिक गड्ढों में कस दिये गए।

सरदार ने मेरे पास आकर कहा—क़ैदी, पन्द्रह दिन की अवधि और दी जाती है, इसके बाद तुम्हारी गर्दन तन से अलग कर दी जायगी। आज दूसरा खत अपने घर को लिखो। अगर ईद तक रुपया न आया, तो तुम्हीं को हलाल किया जायगा।

मैंने दूसरा पत्र लिखकर दे दिया।

सरदार के जाने के बाद तूरया आई। यह वही रमणी थी जो अभी गई है। यही उस सरदार की लड़की थी। यही मेरा गाना सुनती थी और इसी ने सिफारिश करके मेरी जान बचाई थी।

तूरया आकर मुझे देखने लगी। मैं भी उसकी ओर देखने लगा।

तूरया ने पूछा—क़ैदी, घर में तुम्हारे कौन-कौन हैं ?

मैंने बड़े ही कातर स्वर में कहा—दो छोटे-छोटे बालक, और कोई नहीं ?

मुझे मालूम था कि अफ़्रीदी बच्चों को बहुत प्यार करते हैं।

तूरया ने पूछा—उनकी माँ नहीं है ?

मैंने केवल दया उपजाने के लिये कहा—नहीं, उनकी माँ मर गई है। वे अकेले हैं। मालूम नहीं जीते हैं या मर गए; क्योंकि मेरे सिवाय उनकी देख-रेख करनेवाला और कोई नथा।

कहते-कहते मेरी आँखों में आँसू भर आए। तूरया की भी आँखें सूखी न रहीं। तूरया ने अपना आवेग सँभालते हुए कहा—तो तुम्हारे कोई नहीं है, बच्चे अकेले हैं। वे बहुत रोते होंगे।

मैंने मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए कहा—हाँ, रोते ज़रूर होंगे। कौन जानता है, शायद मर भी गये हों ?

तूरया ने बात काटकर कहा—नहीं, अभी मरे न होंगे। अच्छा तुम रहते कहाँ हो ? मैं जाकर पता लगा आऊँगी।

मैंने अपने घर का पता बता दिया। उसने कहा—उस जगह मैं तो कई बार हो आई हूँ। बाज़ार से सौदा लेने मैं अक्सर जाती हूँ, अब जब जाऊँगी, तो तुम्हारे बच्चों की भी खबर ले आऊँगी।

मैंने सशंकित हृदय से पूछा—कब जाओगी ?

उसने कुछ सोचकर कहा—उस जुमेरात को जाऊँगी। अच्छा, तुम वही गीत गाओ।

मैंने आज बड़ी उमंग और उत्साह से गाना शुरू किया। मैंने आज देखा कि उसका असर तूरया पर कैसा पड़ता है। उसका शरीर काँपने लगा, आँखें डबडबा आईं, गाल पीले पड़ गये और वह काँपती हुई बैठ गई। उसकी दशा देखकर मैंने दूने उत्साह से गाना शुरू किया और अन्त में कहा—तूरया, अगर मैं मारा जाऊँ, तो मेरे बच्चों को मेरे मरने की खबर दे देना।

मेरी बात का पूरा असर पड़ा। तूरया ने भर्राए हुए स्वर में कहा—क़ैदी, तुम मरोगे नहीं। मैं तुम्हारे बच्चों के लिये तुम्हें छोड़ दूँगी।

मैंने निराश होकर कहा—तूरया तुम्हारे छोड़ देने से भी मैं बच नहीं सकता। इस जंगल में मैं भटक-भटक कर मर जाऊँगा, और फिर तो तुम पर भी मुसीबत

आसकती है। अपनी जान के लिये तुमको मुसीबत में न डालूँगा।

तूरया ने कहा—मेरे लिए तुम चिन्ता न करो। मेरे ऊपर कोई शक न करेगा। मैं सरदार की लड़की हूँ, जो कहूँगी वही सब मान लेंगे; लेकिन क्या तुम जाकर रुपया भेज दोगे?

मैंने प्रसन्न होकर कहा—हाँ तूरया, मैं रुपया भेज दूँगा?

तूरया ने जाते हुए कहा—तो मैं भी तुम्हें छुटकारा दिला दूँगी।

इस घटना के बाद तूरया सदैव मेरे बच्चों के सम्बन्ध में बातें करती। असदख़ाँ, सचमुच इन अफ़्रीदियों को बच्चे बहुत प्यारे होते हैं। विधाता ने यदि उन्हें बर्बर हिंसक पशु बनाया है, तो मनुष्योचित्त प्रकृति से वंचित भी नहीं रक्खा है। आख़िर जुमेरात आई और अभी तक सरदार वापस न आया। न कोई उस गिरोह का आदमी ही वापस आया। उस दिन संध्या-समय तूरया ने आकर कहा—क़ैदी, अब मैं नहीं जा सकती; क्योंकि मेरा पिता अभी तक नहीं आया। यदि कल भी न आया, तो मैं तुम्हें रात को छोड़ दूँगी। तुम अपने बच्चों के पास जाना; लेकिन देखो, रुपया भेजना न भूलना। मैं तुम पर विश्वास करती हूँ।

मैंने उस दिन बड़े उत्साह से गाना गाया। आधी रात तक तूरया सुनती रही, फिर सोने चली गई। मैं भी ईश्वर से मनाता रहा कि कल और सरदार न आये। काठ में बँधे-बँधे मेरा पैर बिलकुल निकम्मा हो गया था। तमाम शरीर दुख रहा था। इससे तो मैं काल-कोठरी में ही अच्छा था; क्योंकि वहाँ तो हाथ-पैर हिला-डुला सकता था।

दूसरे दिन भी गिरोह वापस न आया। उस दिन तूरया बहुत चिन्तित थी। शाम को आकर तूरया ने मेरे पैर खोलकर कहा—क़ैदी, अब तुम जाओ, चलो, मैं तुम्हें थोड़ी दूर पहुँचा दूँ।

थोड़ी देर तक मैं अवश लेटा रहा। धीरे-धीरे मेरे पैर ठीक हुए और ईश्वर को धन्यवाद देता हुआ मैं तूरया के साथ चल दिया।

तूरया को प्रसन्न करने के लिए मैं रास्ते-भर गीत गाता आया। तूरया बार-बार सुनती और बार-बार रोती। आधी रात के क़रीब मैं तालाब के पास पहुँचा। वहाँ पहुँचकर तूरया ने कहा—सीधे चले जाओ, तुम पेशावर पहुँच जाओगे। देखो, होशियारी से जाना, नहीं तो कोई तुम्हें अपनी गोली का शिकार बना डालेगा। यह लो, तुम्हारे कपड़े हैं; लेकिन रुपया ज़रूर भेज देना। तुम्हारी जमानत मैं

लूँगी। अगर रुपया न आया, तो मेरे भी प्राण जायँगे, और तुम्हारे भी। अगर रुपया आ जायगा, तो कोई भी अफ़ीदी तुम पर हाथ न उठाएगा, चाहे एक बार तुम किसी को मार भी डालो। जाओ ईश्वर तुम्हारी रक्षा करें और तुमको अपने बच्चों से मिलावें।

तूरया फिर ठहरी नहीं। गुनगुनाती हुई लौट पड़ी। रात दोपहर बीत चुकी थी। चारों ओर भयानक निस्तब्धता छाई हुई थी, केवल वायु साँय-साँय करती हुई बह रही थी। आकाश के बीचोबीच चन्द्रमा अपनी सोलहों कला से चमक रहा था। तालाब के तट रुकना सुरक्षित न था। मैं धीरे-धीरे दक्षिण की ओर बढ़ा। बार-बार चारों ओर देखता जाता था। ईश्वर की कृपा से प्रातःकाल होते-होते मैं पेशावर की सरहद पर पहुँच गया।

सरहद पर सिपाहियों का पहरा था। मुझे देखते ही तमाम फ़ौज-भर में हलचल मच गई। सभी लोग मुझे मरा समझे हुए थे। जीता-जागता लौटा हुआ देखकर सभी प्रसन्न हो गये।

कर्नल हैमिलटन साहब भी समाचार पाकर उसी समय मिलने आए और सब हाल पूछकर कहा—मेजर साहब, मैं आपको मरा हुआ समझता था। मेरे पास तुम्हारे दो पत्र

आये थे ; लेकिन मुझे स्वप्न में भी विश्वास न हुआ था कि वे तुम्हारे लिखे हुए हैं। मैं तो उन्हें जाली समझता था। ईश्वर को धन्यवाद है कि तुम जीते बचकर आ गए।

मैंने कर्नल साहब को धन्यवाद दिया और मन-ही-मन कहा—काले आदमी का लिखा हुआ जाली था, और कहीं अगर गोरा आदमी लिखता, तो दो की कौन कहे, चार हज़ार रुपया पहुँच जाता। कितने ही गाँव जला दिये जाते और न-जाने क्या-क्या न होता।

मैं चुपचाप अपने घर आया। बाल-बच्चों को पाकर आत्मा सन्तुष्ट हुई। उसी दिन एक विश्वासी अनुचर के द्वारा दो हज़ार रुपये तूरया के पास भेज दिये।

५

सरदार ने एक ठंढी साँस लेकर कहा—असदख़ाँ अभी मेरी कहानी समाप्त नहीं हुई। अभी तो दुःखान्त भाग अवशेष ही है। यहाँ आकर मैं धीरे-धीरे अपनी सब मुसीबतें भूल गया ; लेकिन तूरया को न भूल सका। तूरया की कृपा से ही मैं अपनी स्त्री और बच्चों से मिल पाया था, यही नहीं, जीवन भी पाया था, फिर भला मैं उसे कैसे भूल जाता।

महीनों और सालों बीत गए। मैंने तूरया को और न उसके बाप को ही देखा। तूरया ने आने के लिये कहा भी; लेकिन वह आई नहीं। वहाँ से आकर मैंने अपनी स्त्री को उसके मायके भेज दिया था, क्योंकि ख्याल था कि शायद तूरया आवे, तो फिर मैं झूठा बनूँगा; लेकिन जब तीन साल बीत गए और तूरया न आई, तो मैं निश्चिन्त हो गया और स्त्री को मायके से बुला लिया। हम लोग सुख-पूर्वक दिन काट रहे थे कि अचानक फिर दुर्दशा की घड़ी आई।

एक दिन सन्ध्या के समय इसी बरामदे में बैठा हुआ अपनी स्त्री से बातें कर रहा था, कि किसी ने बाहर का दरवाज़ा खटखटाया। नौकर ने दरवाज़ा खोल दिया और बेधड़क ज़ीना चढ़ती हुई एक काबुली औरत ऊपर चली आई। उसने बरामदे में आकर विशुद्ध पश्तो भाषा में पूछा—सरदार साहब कहाँ हैं?

मैंने कमरे के भीतर आकर पूछा—तुम कौन हो, क्या चाहती हो?

उस स्त्री ने कुछ मूँगे निकालते हुए कहा—यह मूँगे मैं बेचने के लिये आई हूँ, खरीदियेगा?

यह कहकर उसने बड़े-बड़े मूँगे निकालकर मेज पर रख दिये।

मेरी स्त्री भी मेरे साथ ही कमरे के भीतर आई थी। वह मूँगे उठाकर देखने लगी। उस काबुली स्त्री ने पूछा—सरदार साहब, यह कौन है आपकी!

मैंने उत्तर दिया—मेरी स्त्री है, और कौन है।

काबुली स्त्री ने कहा—आपकी स्त्री तो मर चुकी थी, क्या आपने दूसरा विवाह किया है?

मैंने रोषपूर्ण स्वर में कहा—चुप बेवकूफ़ कहीं की, तू मर गई होगी।

मेरी स्त्री पश्तो नहीं जानती थी, वह तन्मय होकर मूँगे देख रही थी।

किन्तु मेरी बात सुनकर न-मालूम क्यों काबुली औरत की आँखें चमकने लगीं। उसने बड़े ही तीव्र स्वर में कहा—हाँ, बेवकूफ़ न होती, तो तुम्हें छोड़ कैसे देती? दोज़ख़ी पिल्ले, मुझसे झूठ बोला था। ले, अगर तेरी स्त्री तब न मरी थी, तो अब मर गई!

कहते-कहते शेरनी की तरह लपककर उसने एक तेज़ छुरा मेरी स्त्री की छाती में घुसेड़ दिया। मैं उसे रोकने के लिये आगे बढ़ा; लेकिन वह कूदकर आँगन में चली गई और बोली—अब पहचान ले, मैं तूरया हूँ। मैं आज तेरे घर में रहने के लिये आई थी। मैं तुझसे विवाह करती

और तेरी होकर रहती। तेरे लिये मैंने बाप, घर, सब कुछ छोड़ दिया था ; लेकिन तू झूठा है, मक्कार है। तू अब अपनी बीबी के नाम को रो, मैं आज से तेरे नाम को रोऊँगी। यह कहकर वह तेज़ी से नीचे चली गई।

अब मैं अपनी स्त्री के पास पहुँचा। छुरा ठीक हृदय में लगा था। एक ही वार ने उसका काम तमाम कर दिया था। डाक्टर बुलवाया ; लेकिन वह मर चुकी थी।

कहते-कहते सरदार साहब की आँखों में आँसू भर आये। उन्होंने अपनी भीगी हुई आँखों को पोंछकर कहा—असदखाँ, मुझे स्वप्न में भी अनुमान न था कि तूरया इतनी पिशाच-हृदय हो सकेगी। अगर मैं पहले उसे पहचान लेता, तो यह आफ़त न आने पाती ; लेकिन कमरे में अन्धकार था, और इसके अतिरिक्त मैं उसकी ओर से निराश हो चुका था।

तब से फिर कभी तूरया नहीं आई। अब जब कभी मुझे देखती है, तो मेरी ओर देखकर नागिन की भाँति फुफकारती हुई चली जाती है। इसे देखकर मेरा हृदय काँपने लगता है और मैं अवश हो जाता हूँ। कई बार कोशिश की, मैं इसे पकड़वा दूँ ; लेकिन उसे देखकर मैं बिल्कुल निकम्मा हो जाता हूँ। हाथ-पैर बेक़ाबू हो जाते हैं, मेरी सारी वीरता हवा हो जाती है।

यही नहीं, तूरया का मोह अब भी मेरे ऊपर है। मेरे बच्चों को हमेशा वह कोई-न-कोई बहुमूल्य चीज दे जाती है। जिस दिन बच्चे उसे नहीं मिलते, दरवाज़े के भीतर फेंक जाती है। उनमें एक काग़ज़ का टुकड़ा बँधा होता है, जिसमें लिखा रहता है—सरदार साहब के बच्चों के लिए।

मैं अभी तक इस स्त्री को नहीं समझ पाया। जितना ही समझने का यत्न करता हूँ, उतनी ही यह कठिन होती जाती है। नहीं समझ में आता है कि यह मानवी है या राक्षसी!

इसी समय सरदार साहब के लड़के ने आकर कहा—देखिये, वही औरत यह सोने का तावीज़ दे गई है।

सरदार साहब ने मेरी ओर देखकर कहा—देखा, असदख़ाँ, मैं तुमसे कहता न था। देखो, आज भी यह तावीज़ दे गई। न मालूम, कितने ही तावीज़ और कितनी ही दूसरी चीजें, अर्जुन और निहाल को दे गई होगी। कहता हूँ कि तूरया बड़ी ही विचित्र स्त्री है।

६

सरदार साहब से विदा होकर मैं घर चला। चौरस्ते से बुड्ढे की लाश हटा दी गई थी; पर वहाँ पहुँचकर मेरे रोएँ

खड़े हो गए। मैं आप-ही-आप एक मिनट वहाँ खड़ा हो गया। सहसा पीछे देखा। छाया की भाँति एक स्त्री मेरे पीछे-पीछे चली आ रही थी। मुझे खड़ा देखकर वह स्त्री भी रुक गई और एक दूकान में कुछ खरीदने लगी।

मैंने अपने हृदय से प्रश्न किया—क्या वह तूरया है?

हृदय ने उत्तर दिया—हाँ, शायद वही है।

तूरया मेरा पीछा क्यों कर रही है? यही सोचता हुआ मैं घर पहुँचा और खाना खाकर लेटा; पर आज की घटनाओं का मुझ पर ऐसा असर पड़ा था कि किसी तरह भी नींद न आती थी। जितना ही मैं सोने का यत्न करता, उतना ही नींद मुझसे दूर भागती।

फ़ौजी घड़ियाल ने बारह बजाए, एक बजाए, दो बजाए; लेकिन मुझे नींद न थी। मैं करवटें बदलता हुआ सोने का उपक्रम कर रहा था। इसी उधेड़-बुन में कब नींद ने मुझे धर दबाया, मुझे ज़रा भी याद नहीं।

यद्यपि मैं सो रहा था; लेकिन मेरा ज्ञान जाग रहा था। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि कोई स्त्री, जिसकी आकृति तूरया से बहुत कुछ मिलती थी; लेकिन उससे कहीं अधिक भयावनी थी, दीवार फोड़कर भीतर घुस आई है। उसके हाथ में एक तेज़ छुरा है, जो लालटेन के प्रकाश में चमक

रहा है। वह दबे पाँव, सतर्क नेत्रों से ताकती हुई धीरे-धीरे मेरी ओर बढ़ रही है। मैं उसे देखकर उठना चाहता हूँ; लेकिन हाथ-पैर मेरे क़ाबू में नहीं हैं। मानो उनमें जान है ही नहीं। वह स्त्री मेरे पास पहुँच गई। थोड़ी देर तक मेरी ओर देखा, और फिर अपने छुरेवाले हाथ को ऊपर उठाया। मैं चिल्लाने का उपक्रम करने लगा; लेकिन मेरी घिग्घी बँध गई। शब्द कण्ठ से फूटा ही नहीं। उसने मेरे दोनों हाथों को अपने घुटने के नीचे दबाया और मेरी छाती पर सवार हो गई। मैं छटपटाने लगा और मेरी आँखें खुल गईं। सचमुच एक काबुली औरत मेरी छाती पर सवार थी। उसके हाथ में छुरा था और वह छुरा मारना ही चाहती थी।

मैंने कहा—कौन तूरया?

यह वास्तव में तूरया ही थी। उसने मुझे बलपूर्वक दबाते हुए कहा—हाँ, मैं तूरया ही हूँ। आज तूने मेरे बाप का ख़ून किया है, उसके बदले में तेरी जान जायगी।

यह कहकर उसने अपना छुरा ऊपर उठाया। इस समय मेरे सामने जीवन और मरण का प्रश्न था। जीवन की लालसा ने मुझमें साहस का सञ्चार किया। मैं मरने के लिये तैयार न था, मेरे अरमान और उमंगें अब भी

बाक़ी थीं। मैंने बलपूर्वक अपना दाहिना हाथ छुड़ाने का प्रयत्न किया और एक ही झटके में मेरा हाथ छूट गया। मैंने अपनी पूरी ताक़त से तूरया का छुरावाला हाथ पकड़ लिया। न-मालूम क्यों तूरया ने कुछ भी विरोध न किया। वह मेरे हाथ को देखती हुई मेरी छाती से उतर आई। उसकी आँखें पथराई हुई थीं, और वह एकटक मेरे हाथ की ओर देख रही थी।

मैंने हँसकर कहा—तूरया, अब तो पासा पलट गया। अब तेरे मरने की पारी है। तेरे बाप को मारा और अब तुझे भी मारता हूँ।

तूरया अब भी एकटक मेरे हाथ की ओर देख रही थी। उसने कुछ भी उत्तर न दिया।

मैंने उसे झँझोड़ते हुए कहा—बोलती क्यों नहीं ? अब तो तेरी जान मेरी मुट्ठी में है।

तूरया का मोह टूटा। उसने बड़े गम्भीर और दृढ़ कण्ठ से कहा—तू मेरा भाई है। तूने अपने बाप को मारा है आज !

तूरया की बात सुनकर मुझे उस अवसर भी हँसी आ गई।

मैंने हँसते हुए कहा—अफ़्रीदी मक्कार भी होते हैं, यह आज ही मुझे मालूम हुआ।

तूरया ने शान्त स्वर में कहा—तू मेरा खोया हुआ बड़ा भाई नाज़िर है। यह जो तेरे हाथ में निशान है, वही बतला रहा है कि तू मेरा खोया हुआ भाई है।

बचपन से ही मेरे हाथ में एक साँप गुदा हुआ था। और यही मेरी पहिचान फ़ौजी रजिस्टर में भी लिखी हुई थी।

मैंने हँसकर कहा—तूरया तू मुझे भुलावा नहीं दे सकती। मैं अब तुझे किसी तरह न छोड़ूँगा।

तूरया ने अपने हाथ से छुरा फेंककर कहा—सचमुच तू मेरा भाई है। अगर तुझे विश्वास नहीं होता, तो देख, मेरे दाहिने हाथ में भी ऐसा ही साँप गुदा हुआ है।

मैंने तूरया के हाथ पर दृष्टि डाली, तो वहाँ भी बिल्कुल मेरा ही जैसा साँप गुदा हुआ था।

मैंने कुछ सोचते हुए कहा—तूरया, मैं तेरा विश्वास नहीं कर सकता, यह इत्तफाक़ की बात है।

तूरया ने कहा—मेरा हाथ छोड़ दे। मैं तुझपर वार न करूँगी। अफ़रीदी झूठ नहीं बोलते।

मैंने उसका हाथ छोड़ दिया, वह पृथ्वी पर बैठ गई, और मेरी ओर देखने लगी। थोड़ी देर बाद उसने कहा—अच्छा तुझे अपने माँ-बाप का पता है?

मैंने सिर हिलाकर उत्तर दिया—नहीं, मैं सरकारी अनाथालय में पाला गया हूँ।

मेरी बात सुनकर तूरया उठ खड़ी हुई, और बोली—तब तू मेरा खोया हुआ बड़ा भाई नाज़िर ही है। मेरे पैदा होने के एक साल पहले तू खोया था। मेरे माँ-बाप सब सरकारी फ़ौज पर छापा डालने के लिये आए थे, और तू भी साथ था। मेरी माँ लड़ने में बड़ी होशियार थीं। तू उनकी पीठ से बँधा हुआ था और वे लड़ रही थीं। इसी समय एक गोली उनके पैर में लगी और वे गिरकर बेहोश हो गईं। बस, कोई तुझे खोल ले गया। मेरी माँ को मेरा बाप अपने कंधे पर उठा लाया; लेकिन तुझे न खोज सका। बहुत तलाश किया; लेकिन कहीं भी तेरा पता न लगा। अम्माँ अकसर तेरी चर्चा किया करती थीं। उनके हाथ में भी यही निशान था।

यह कहकर उसने फिर वही हाथ मुझे दिखलाया। मैं उसका और अपना साँप मिलाने लगा। वास्तव में दोनों साँप हूबहू एक-से-एक थे, बाल-भर भी अन्तर न था। मैं हताश-सा होकर चारपाई पर गिर पड़ा।

तूरया मेरे पास बैठकर सस्नेह मेरे माथे का पसीना पोंछने लगी। उसने कहा—नाज़िर, माँ कहती थीं कि तू

मरा नहीं, ज़िन्दा है। एक दिन ज़रूर तू हम लोगों से मिलेगा।

तूरया की बात पर अब मुझे विश्वास हो चला था। न-जाने कौन मेरे हृदय में बैठा हुआ कह रहा था, कि तूरया जो कहती है, ठीक है। मैंने एक लम्बी साँस लेकर कहा—क्यों तूरया, मैंने जिसे आज मारा है, वह हम लोगों का बाप था ?

तूरया के मुँह पर शोक का एक छोटा-सा बादल घिर आया। उसने बड़े ही दुःखपूर्ण स्वर में कहा—हाँ नाज़िर, वह अभागा हमारा बाप ही था। कौन जानता था कि वह अपने प्यारे लड़के के हाथों हलाल होगा।

फिर सान्त्वना-पूर्ण स्वर में बोली—लेकिन नाज़िर, तूने तो अनजान में यह काम किया है। बाप के मरने से मैं बिल्कुल अकेली हो गई थी ; लेकिन अब तुझे पाकर मैं बाप के रंज को भूल जाऊँगी। नाज़िर, तू रंज न कर। तुझे क्या मालूम था कि कौन तेरा बाप है और कौन तेरी माँ है ! देख, मैं ही तुझे मारने के लिये आई थी, तुझे मार डालती ; लेकिन खुदा की मेहरबानी से मैंने अपना खानदानी निशान देख लिया। खुदा की ऐसी ही मरज़ी थी।

तूरया से मालूम हुआ कि मेरे बाप का नाम हैदरखाँ

था, जो अफ्रीदियों के एक गिरोह का सरदार था। मैंने सरदार हिम्मतसिंह के सम्बन्ध में भी तूरया से बातें कीं, तो मालूम हुआ कि तूरया सरदार साहब को प्यार करने लगी थी। वह हमारे बाप से लड़-भिड़कर सरदार साहब से निकाह करने आई थी; लेकिन वहाँ इनकी स्त्री को पाकर वह ईर्षा और क्रोध से पागल हो गई, और उसने उनकी स्त्री की हत्या कर डाली। काबुली औरत के भेष में जाकर वह कुछ मज़ाक करना चाहती थी; लेकिन घटना-चक्र उसे दूसरे ही ओर ले गया।

मैंने सरदार साहब की दशा का वर्णन किया। सुनकर वह कुछ सोचती रही और फिर कहा—नहीं, वह आदमी झूठा और दग़ाबाज़ है। मैं उससे निकाह नहीं करूँगी; लेकिन तेरी खातिर अब सब भूल जाऊँगी। कल उनके बच्चों को ले आना, मैं प्यार करूँगी।

प्रातःकाल तूरया को देखकर मेरा नौकर आश्चर्य करने लगा। मैंने उससे कहा—यह मेरी सगी बहन है।

नौकर को मेरी बात पर विश्वास न हुआ। तब मैंने विस्तारपूर्वक सब हाल कहा और उसे उसी समय अपने बाप की लाश की खबर लेने के लिये भेजा। नौकर ने आकर कहा—लाश अभी तक थाने पर रक्खी हुई है।

मैंने बड़े साहब के नाम एक पत्र लिखकर सब हाल बता दिया, और लाश पाने के लिये दरख्वास्त की। उसी समय साहब के यहाँ से स्वीकृति आ गई।

एक पत्र लिखकर मेजर साहब को भी बुलवाया।

मेजर साहब ने आकर कहा—क्या बात है असद? इतनी जल्दी आने के लिये क्यों लिखा?

मैंने हँसते हुए कहा—मेजर साहब, मेरा नाम असद नहीं रहा, मेरा असली नाम है नाज़िर।

मेजर साहब ने साश्चर्य मेरी ओर देखते हुए कहा—रात-भर में तुम पागल तो नहीं हो गये?

मैंने हँसते हुए कहा—नहीं, सरदार साहब, अभी और सुनिये। तूरया मेरी सगी बहन है, और जिसे कल मैंने मारा, वह मेरा बाप था।

सरदार साहब मेरी बात सुनकर मानो आकाश से गिर पड़े। उनकी आँखें कपाल पर चढ़ गईं। उन्होंने कहा—क्यों असद, तुम मुझे भी पागल कर डालोगे?

मैंने सरदार साहब का हाथ पकड़कर कहा—आइये, तूरया के मुँह से ही सब हाल सुन लीजिये। तूरया मेरे यहाँ बैठी हुई आपकी प्रतीक्षा कर रही है।

सरदार साहब सकते की हालत में मेरे पीछे-पीछे चले।

तूरया उन्हें आते देखकर उठ खड़ी हुई और हँसती हुई बोली—क़ैदी, तुम वही गीत फिर गाओ। तूरया की बात सुनकर मैं और सरदार साहब भी हँसने लगे।

सरदार साहब को बिठाकर मैंने विस्तार-पूर्वक सब हाल कहा। कहानी सुनकर सरदार साहब ने मुझसे कहा—नाज़िर, अब तुम्हें नाज़िर ही कहूँगा, तूरया को मैं तुमसे माँगता हूँ। मैं इसके साथ विवाह करूँगा।

मैंने हँसकर कहा—लेकिन आप हिन्दू हैं, और हम लोग मुसलमान।

सरदार साहब ने हँसकर कहा—पलटनियों की कोई जाति-पाँति नहीं है।

तूरया ने उसी समय कहा—लेकिन सरदार साहब, मैं तुमसे विवाह नहीं करूँगी, हाँ अगर तुम अपने दोनों बच्चों को मेरे पास भेज दो, तो मैं उनकी माँ बन जाऊँगी।

सरदार साहब हँसते हुए विदा हुए।

उसी दिन शाम को हमने सरदार साहब, तूरया और दूसरे पलटनियों के साथ जाकर अपने बाप की लाश दफ़नाई।

सूरज डूब रहा था। धीरे-धीरे अँधेरा हो रहा था, और हम दोनों, तूरया और मैं, अपने बाप की कब्र पर फ़ातिहा पढ़ रहे थे।
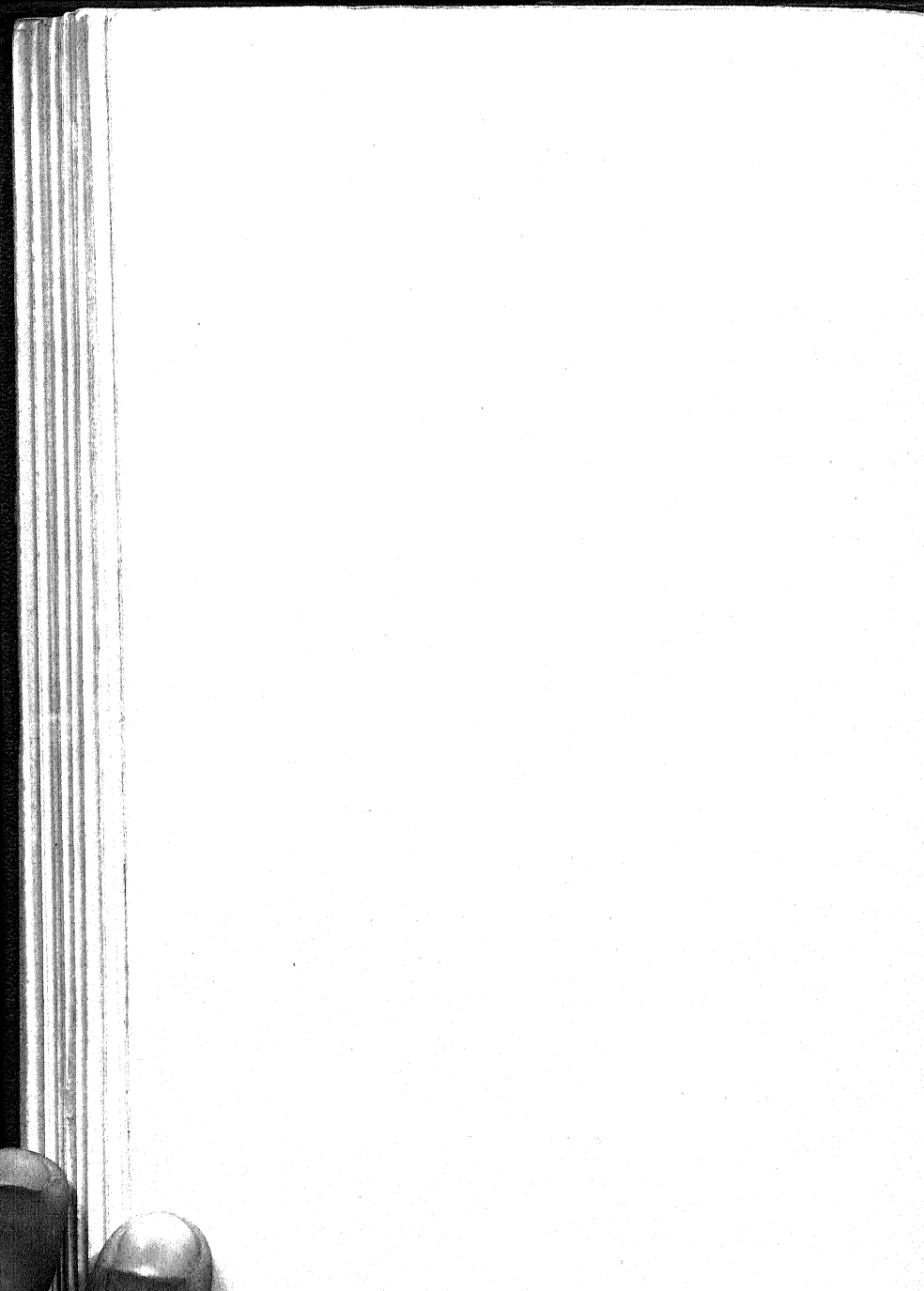
वृक्ष-विज्ञान

लेखक-द्वय—{ बाबू प्रवासीलाल वर्म्मा, मालवीय
बहन शान्तिकुमारी वर्म्मा, मालवीय

यह पुस्तक हिन्दी में इतनी नवीन, इतनी अनोखी और इतनी उपयोगी है कि इसकी एक-एक प्रति देश के प्रत्येक व्यक्ति को मँगा कर अपने घर में अवश्य रखना चाहिए। क्योंकि—इसमें प्रत्येक वृक्ष की उत्पत्ति का मनोरंजक वर्णन देकर, यह बतलाया गया है कि उसके फल, फूल, जड़, छाल, अन्तरछाल, और पत्ते आदि में क्या-क्या गुण हैं तथा उनके उपयोग से, सहज ही में कठिन-से-कठिन रोग किस प्रकार चुटकियों में दूर किये जा सकते हैं। इसमें—पीपल, बड़, गूलर, जामुन, नीम, कटहल, अनार, अमरूद, मौलसिरी, सागवान, देवदार, बबूल, आँवला, अरीठा, आक, शरीफा, सहँजन, सेमल, चंपा, कनेर आदि लगभग एक सौ वृक्षों से अधिक का वर्णन है। और आरंभ में एक ऐसी सूची भी दे दी गई है, जिससे, आप आसानी से यह निकाल सकते हैं कि कौन से रोग में कौनसा वृक्ष लाभ पहुँचा सकता है। प्रत्येक रोग का सरल नुसखा आपको इसमें मिल जायगा।

जिन छोटे-छोटे गाँवों में डाक्टर नहीं पहुँच सकते, हकीम नहीं मिल सकते और वैद्य भी नहीं होते, वहाँ के लिये तो यह पुस्तक एक ईश्वरीय विभूति का काम देगी। इसलिए अविलम्ब इस पुस्तक को मँगा लेना चाहिए। छपने के पहले ही इसके आर्डर आने लगे हैं। बहुत जल्दी इसका प्रथम संस्करण समाप्त हो जाने की संभावना है।

पृष्ठ-संख्या पौने तीन सौ, मूल्य सिर्फ १॥),

छपाई-सफाई, कागज़ और कव्हरिंग बिल्कुल इंग्लिश।